हिन्दी एक संगठित करनेवाली शक्ति है।
हिन्दी का प्रचार कार्य एक वाग्यज्ञ है।।
– काकासाहेब गाडगीळ

● वर्ष : २२ ● फरवरी-मार्च २०२६ (संयुक्तांक)
● अंक : ९० वाँ ● मूल्य रु. १०/-
पंजीकरण क्र. : **MAHHIN2010/48645**

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे की मुखपत्रिका

समिति संवाद

* संपादक *
ज. गं. फगरे

* कार्यकारी संपादक *
डॉ. सुनील देवधर

*** संपादकीय पता ***
महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिंदी भवन, १४३९, शुक्रवार पेठ,
बाजीराव रोड, शेवडे गली,
पुणे : ४११ ००२ (महाराष्ट्र)
दूरध्वनि : ०२०-२४४५३१५९
मोबाईल : ९७६३६२९२४३
ई-मेल : **samitisanvaad@gmail.com**
website - https://mrpspune.org/index

MAHATRSHTRA RASTRABHASA

● वार्षिक रु. १००/- ●

● इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। संपादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● समिति संवाद पत्रिका की मुद्रण-व्यवस्था के लिए डॉ. स्नेहसुधा कुलकर्णी और मुद्रण संशोधन हेतु डॉ. स्मिता दात्ये के आभारी हैं।

मुद्रक- प्रकाशक : जयराम गंगाधर फगरे द्वारा महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लिए पालवी मुद्रणालय, ९८५ सदाशिव पेठ, पुणे ३० से मुद्रित करवाकर हिंदी भवन, १४३९, शुक्रवार पेठ, बाजीराव रोड, शेवडे गली, पुणे ४११००२ (महाराष्ट्र) से प्रकाशित की गई।
संपादक : जयराम गंगाधर फगरे.

Printed & Published by : J. G. Fagare on behalf of Maharashtra Rashtrabhasha Prachar Samiti & Printed at Palvi Mudranalaya, 985 Sadashiv Peth, Pune-30 and Published at 1439, Shukrawar Peth, Bajirao Road, Pune-2.
Editor : Jayram Gangadhar Fagare

अनुक्रम

संपादकीय

- शब्द, साहित्य का आधार – ज. गं. फगरे ४
- मुद्रण का भूत – डॉ. सुनील देवधर ६

लेख

- भाषा के साम्राज्य में शब्दों की आचार संहिता – डॉ. शोभा जैन ८
- उपनामों से प्रसिद्ध साहित्यकार – ओमप्रकाश शिव १०
- मैंया, मैं नहीं माखन खायो – डॉ. जया परांजपे १३

भाषा प्रसंग

- बोलियों के साथ ही संवरेगी हिन्दी – पंकज चतुर्वेदी १६
- हिन्दी कारक और वाक्य प्रयोग – मनीषा राणे १९
- नवजागरणकालीन हिन्दी – डॉ. महेश दवंगे २१
- भारत में हिन्दी भाषा का चिंताजनक स्तर – कार्तिक नाईक २४
- हिन्दी शिक्षण योजना (संस्मरण) – राजीव रंजन चतुर्वेदी २६

स्मरण

- प्राकृत रामकथा में राम – डॉ. नीलम जैन २८
- शोषण के विरुद्ध निर्भय – अपरोजय 'निराला' – सुसंस्कृति परिहार ३१

कथालोक

- 'हैद्राबाद' – अनूप जालान ३४
- लघुकथा – १) जादूगर २) तुम क्या जानो – अशोक गुजराथी ३६

अनुवाद

- कवि – कुसुमाग्रज हिन्दी अनुवाद –जयन्ती भास्कर वाडेकर
  मूल मराठी कविता – कणा हिन्दी अनुवाद – रीढ़ ३७

कविता/गीत/गज़ल

- १) कौन सगा? २) हंसिया जुगनू और माँ ३) कैसे जानूँ? – शोभा शर्मा ३८
  २) दोहे – चंद्रकांत दीक्षित ४०
- गीत – १) जिन्दगी को ठाँव दो २) हार की अब बात – आदर्शिनी श्रीवास्तव ४१
- हिन्दी गज़ल – १) देख २) बात कर – 'साकेत' सुमन चतुर्वेदी ४२

चिंतन

- पहचाने कौन आपका मित्र – डॉ. ऋषिमोहन श्रीवास्तव ४३

पुस्तक चर्चा

- विविध रंगो में सजा काव्य संग्रह – मेरा सरमाया – समीक्षक – रमेश यादव ४५

व्यंग्य

- आप बड़े अजीब हैं – प्रेम जन्मेजय ४७

- वसन्त के संग – मन ले उमंग – डॉ. मंजू चोपड़ा १५, १८
- ये वक्त भी नहीं रहेगा – फेसबुक से २७, ३०
- हिंदी भारत के माथे की बिंदी – मुकेशकुमार 'ऋषिवर्मा' ३३, ३५

● विशेष अनुरोध ●

समिति संवाद में प्रकाशनार्थ आपकी रचनाएँ युनिकोड में '**samitisanvaad@gmail.com**' इस ईमेल आयडी पर भेजें। आपकी प्रतिक्रियाओं और साहित्यिक गतिविधियों से सम्बन्धित समाचारों/रिपोर्ट्स का भी स्वागत है।

– संपादक

संपादकीय

शब्द, साहित्य का आधार

अक्षर अक्षर जोड कर/लिखे, दो शब्द/ जन्मदिन/ और इनके सृजन के साथ ही/ खिलखिला उठा/ सम्पूर्ण अक्षर/वीणा के तारों सा/ झंकृत हुआ/शब्द समाज/फिर हो गया मौन/ मनन के लिए/ फिर नए, सृजन के लिए।

जन्म फिर चाहे मनुष्य का हो या संस्था का, या फिर हो शब्दों का, जन्म एक विकास क्रम की ओर बढने का संकेत करता है. शब्दों का जीवन तो निरंतर नए और विविध स्वरूपों में अपने होने की पहचान कराता है। शब्द साहित्य का आधार है, शब्दों की नींव पर ही साहित्य का भवन खडा होता है। मनुष्य के जीवन में आनेवाली अवस्थाओं की तरह ही शब्दों के जीवन की भी विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। जहाँ शब्द जनमते हैं, बढते हैं, फिर उलटते-पलटते हैं, बोलने लगते हैं, चलते हैं, उन्नति करते हैं, उनकी अवनति होती है, वे मरते हैं, तो कभी अपनी यात्रा में दूसरों को साथ लिए चलते हैं, अर्थात अन्य भाषाओं के शब्दों का साथ होना ऐसा ही तो मनुष्य समाज है. जहाँ उसके जन्म से लेकर अंतिम यात्रा तक कई पडाव होते हैं और वह विविधताओं के साथ जीता है।

मनुष्य और शब्द का सम्बन्ध भाषा से है, शब्द से भाषा बनती है और मनुष्य यानी हम इस भाषा के माध्यम से संवाद स्थापित करते हैं। शब्द बोलने लगते हैं यानी भाषा का विस्तार होने लगता है। हम इसके माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति देते हैं यह अभिव्यक्ति साहित्य के विविध रूपों में हमारे सामने आती है, कभी कविता, तो कभी कथा, उपन्यास, लेख, यात्रा संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, डायरी, और भी कई विषय, जिन्हें हम 'साहित्येतर' भी कहते हैं। लेकिन सच तो यह है कि जो भी शब्दों में है और मनुष्य के हित की बात करता है। वह सभी साहित्य है, ''सहितस्थ भाव: इति साहित्यम्'' यह शब्द 'सहित' से बना है, जो 'हितेन सह सहित तस्य भव: यानी कल्याणकारी भाव के साथ होने को दर्शाता है। साहित्य केवल मनोरंजन नहीं है, बल्कि समाज का मार्गदर्शन और कल्याण करता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि, साहित्य से मनोरंजन हो ही नहीं, अर्थात साहित्य से ज्ञानप्राप्ति और मनोरंजन दोनों की ही प्राप्ति होने की अपेक्षा है. ऋषि गाता है-

''साहित्यं अथ संगीतम् सरस्वत्या स्तन द्वयं एकम् आपाद मधुरम, द्वितीयं आलोचनामृतं''

अर्थात साहित्य और संगीत सरस्वती के दो स्तन है, जिसमें एक से सतत मधुरम् यानी संगीत प्राप्त होता है और दूसरे से साहित्य यानी जीवन का ज्ञान. सरस्वती हमारे ज्ञान और रंजन की दाता है इसीलिए हम उससे 'ज्ञानानन्द' प्राप्त करते हैं। अभी कुछ दिन पहले ही हमने सरस्वती उत्सव मनाया, विद्यालयों में सरस्वती पूजन किया, माना जाता है कि इसी दिन यानी वसन्त पंचमी के दिन सरस्वती का प्रकट दिन है। सरस्वती की प्रतिमा में एक हाथ में पुस्तक है और दूसरे हाथ में वीणा। यानी ज्ञान पुस्तक-रूप में और वीणा संगीत के रूप में। और हमारे जीवन में इन दोनों ही तत्त्वों की महत् आवश्यकता है।

पिछले कुछ वर्षों में हमने यह भी अनुभव किया कि राजनीतिक कारणों से विद्यालयों में सरस्वती पूजा या वसन्त पंचमी का विरोध किया जाने लगा, और विरोध मात्र इसलिए कि इस प्रतिमा को मात्र धर्म के साथ जोडकर देखा जाने लगा, जबकि इसे संस्कृति के साथ जोडकर देखा जाना चाहिए। संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है. जीवन के आंतरिक और बाह्य विकास क्रम में जो मूल्य और जीवनशैली बनती है, वही हमारी, देश की संस्कृति है। कम शब्दों और

व्यापक अर्थ में किसी देश की संस्कृति से हम मानव जीवन तथा व्यक्तित्व के रूपों को समझ सकते हैं, जिन्हें देश-विदेश में महत्त्वपूर्ण और मूल्यों का अधिष्ठान समझा जाता है।

डॉ. श्रीधर व्यं. केतकर ने 'मराठी ज्ञान कोष' में संस्कृति की व्याख्या करते हुए लिखा है -

''जाति राष्ट्रदि संघानां साकल्यं चरितस्य यत्
व्यक्तं संस्कृति शब्देन्, भाषा शास्त्रात्मकं ननु''

अर्थात जाति, राष्ट्र आदि संघों के चरित की जो सम्पूर्णता है उसकी भाषाशास्त्रात्मक अभिव्यक्ति ही 'संस्कृति' शब्द द्वारा होती है।

शब्दों से निर्मित भाषा ही हमारे संस्कार को अभिव्यक्त करती है। ज्ञान-चेतना और मन-रंजन की इसी जागृति ने हममें यह उमंग भर दी कि हम सब के साथ प्रेम का विस्तार करें और जीवन को उल्लास, पवित्रता और सुन्दरता से परिपूर्ण करें. हमारी यही उमंग काव्य और कला बनकर व्यक्त हुई और इसे ही संस्कृति कहा गया। समाज में श्रेष्ठ साहित्य की निर्मिति, संस्कृति से होगी, और संस्कृति, श्रेष्ठ शब्दों, विचारों और भावों से ही व्यापक स्तर पर निर्मित हो सकेगी।

जयराम गं. फगरे

प्रतिक्रियाएँ

'समिति संवाद' महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे की मासिक मुखपत्रिका है। यह पत्रिका २२ वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका के संपादक श्री.ज.गं. फगरे जी हैं।

मेरी कृति 'खाम खयाली' पर आदरणीय श्री हितेश व्यास जी द्वारा लिखी गई 'समीक्षा पत्रिका' 'समिति संवाद' में प्रकाशित हुई है।

पत्रिका बेहतरीन कहानियाँ, लेख, कविताएँ, गीत, गजलों, अनुवाद, व्यंग्य, पुस्तक चर्चा से सजी हुई है। इसी पत्रिका में एक व्यंग्य है अर्चना चतुर्वेदी जी का 'शो ऑफ युग'। जिसमें आज के चलन पर व्यंग्य है। पत्रिका पठनीय है और हिंदी भाषा के प्रचार के लिए संपादक महोदय को हार्दिक आभार और बहुत बहुत बधाई।

इस पत्रिका में हिंदी भाषा पर एक संपादकीय है जो सच ही है... ''कहीं यह विरोध केवल विरोध के लिए या राजनीति के लिए तो नहीं है? अब तक केवल दक्षिण के कुछ राज्य ही हिंदी का विरोध करते थे, पर अब यह विरोध भारत भर में क्यों फैलने लगा है और इसके पीछे क्या प्रच्छन्न एजेंडा है, इस बात पर भी विचार होना चाहिए।''

समीक्षा प्रकाशन हेतु संपादक महोदय जी का हार्दिक आभार एवं पत्रिका के सर्वांगीण विकास एवं हिंदी प्रचार हेतु बहुत बहुत शुभकामनाएँ।

- लीना दरियाल, लखनऊ

समिति संवाद के तीन अंक मिले। पत्रिका अच्छी और बहुआयामी है। दूर-दूर के लेखकों की रचनाएँ उसकी व्यापकता की साक्षी हैं। सम्पादकीय भी पढ़े। लेखकीय कर्म वाला सम्पादकीय जोरदार है। मेरा व्यंग्य छापने के लिए धन्यवाद। शिरीष जी की कविता ने उनकी स्मृति को ताज़ा कर दिया।

-डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया, भोपाल

रचनात्मक विविधता लिये हुए अच्छा अंक है।

-कौशल पाण्डेय, कानपुर

कार्यकारी संपादक की कलम से

मुद्रण का भूत

– डॉ. सुनील देवधर, पुणे

कहा गया है आज ''भाष्य वक्तायाँ वाचि'' यानी जो वाणी द्वारा व्यक्त होती है, वह भाषा और भाषा के सन्दर्भ में यह भी कहा गया है कि –भाषा द्वारा नियम पठनम्, न च नियम द्वारा भाषणम्।'' सहजतया यथा वदति तथाभ्यास्ं कर्तव्यम्'' आशय यह है कि पहले भाषा आती है, या बोली जाती है, और उसके बाद नियम बनते हैं। भाषा के माध्यम से नियमों का नियमन होता है, मात्र नियमों के माध्यम से भाषा नहीं बोली जा सकती। सरल अर्थ में हम इसे इस तरह भी समझ सकते हैं कि एक नदी तो पहले से ही बह रही है, उसके बाद हम उसके घाट बनाते हैं, उसके प्रवाह को एक आकार भी देते हैं जिनके बीच से होकर वह बहती है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि कोई बालक अपनी माँ की गोद में बैठकर बोलना पहले सीख लेता है, वो कई बार अर्थ भी नहीं जानता, व्याकरण या नियम जानने का तो प्रश्न ही नहीं है। सहजता से जो बोली जाए, उसी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए. इसी क्रिया से भाषा का सामर्थ्य प्राप्त होगा। भाषा के सन्दर्भ में नरेश सक्सेना ने अपनी कविता में, शिशु के माध्यम से जो बात कही है. वह एकदम सटीक बैठती है, वह लिखते हैं– शिशु लोरी के शब्द नहीं/ संगीत समझता है/ बाद में सीखेगा भाषा/अभी वो अर्थ समझता है/ समझता है सब की मुस्कान/सभी की अले ले ले ले/तुम्हारे वेद, पुराण, कुरान,/अभी वो व्यर्थ समझता है/ अभी वो अर्थ समझता है/समझने में उसको, हो तुम कितने असमर्थ, समझता है/शिशु लोरी के शब्द नहीं/संगीत समझता है/ बाद में सीखेगा भाषा/ उसी से जो है आशा।

भाषा और शब्द के साथ ही उसके अर्थ के सन्दर्भ में इस कविता के साथ ही हमें स्मरण हो आता है, वाल्मीकि का प्रसंग जब क्रौंच पक्षी को तीर लगने के साथ ही उसकी तडपन से, करूणावश कविता फूटी–

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वति:सआ:। यत्क्रोंचमिथुना देकमवधी: काम मोहितम्।।''

यह 'श्लोक' सहज ही वाल्मीकि के मुख से निकला। कथा आती है कि तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा यह तो अनुष्टुभ छन्द है। आप इसी छन्द में किसी नायक पर कोई रचना कीजिए। तब वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य की रचना की. यानी रचना से पहले उसके शास्त्र का ज्ञान नहीं होता, इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि पहले बोला जाना. फिर उसको नियम में बांधना।

अब बोले जाने के स्तर पर भाषा और शब्द की शुद्धता पर विचार किया जाने लगता है, तब नियमों के अनुसार उसके उच्चारण की बात आती है, नियम कहता है–

यद्यपि बहुनाधीशे, तथापि पठ पुत्र व्याकरण् स्वजनो, श्वजनो माभूत, सकलम् शकलम् सकृत, शकृत।

अर्थात बहुत जानने के बाद भी अक्षर के बदलने से अर्थ बदलता है, इसलिए थोडा उस शब्द के व्याकरण और नियम को भी जानना चाहिए, व्याकरण को पढ लेना चाहिए. क्यों कि श्लोक में शब्दों के अर्थ एकदम बदल रहे हैं –

स्वजन–अपने लोग (आत्मीय) श्वजन–श्वान या कुत्ता, सकल (पूर्ण) शकलम् –खणु खण्ड (विभक्त) सकृत – प्रथम या पहला शकृत विष्ठा या मल।

स्पष्ट है कि पहले भाषा बोली गई, फिर सुविधा के लिए उसके नियम बने और लिखी जाने लगी, लिखे जाने के बाद तो उसका नियमों से अनुशासित होना अनिवार्य हो गया। लिखने के लिए लिपि बनी। लिपि यानी ध्वनि से सम्बन्धित चिह्नों का उपयोग

करनेवाली लेखन पद्धति को लिपि कहते हैं तथा भावों और विचारों को स्पष्ट करने के लिए वाक्य के अन्तर्गत जिन चिह्नों का उपयोग किया जाता है, उन्हें विराम चिह्न कहते हैं।

भाषा लिखते समय इन नियमों का व्यवहार किया जाने लगा। हाथ से लिखने के बाद इसके टंकण की शुरुआत हुई, हाथ से लिखे जाने तक सुलेख की एक परम्परा और प्रतियोगिता भी थी, जो अब भी कहीं कहीं जीवित है। टंकण के बाद मुद्रण-कला का विकास हुआ, चीन ने लगभग दूसरी शताब्दी में. फिर लगभग १४५० में पहली प्रिटिंग प्रेस यूरोप में विकसित हुई। पुस्तकें छपने लगीं, पढ़ी जाने लगीं और इसके साथ ही मुद्रण की गलतियों पर भी ध्यान गया। बार-बार पढे जाने के बाद भी त्रुटियाँ सामने आ जातीं, तब एक शब्द चलन में आया 'मुद्रण का भूत' क्यों कि सामने लिखा होने के बाद भी नजर नहीं आता था और गलतियाँ बाकी रह जातीं। इस कमी को दूर करने के लिए व्यावसायिक मुद्रण संशोधक भी (प्रूफ रीडर) रखे जाने लगे। आज भी पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों की शुद्ध छपाई के लिए प्रूफ रीडर की आवश्यकता अनुभव होती है।

मुद्रण की इन भूलों से शब्द और उसके अर्थ में बदलाव देखे गए। उसकी चर्चा होने लगी। चर्चा के इसी क्रम में एक दिन मुद्रण की भूलों के सन्दर्भ में, धर्मवीर भारती के लिखे एक प्रसंग की चर्चा करते हुए हमारे आत्मीय भाषा के जानकार सुमित पॉल ने भी इसे दुहराया। दरअसल धर्मवीर भारती जब लोकप्रिय पत्रिका धर्मयुग का सम्पादन कर रहे थे, तो पदभार संभालते ही उन्होंने लिखा था - ''सम्पादक होने के नाते मैं अपने दायित्वों के प्रति पूर्णत: सजग और सतर्क हूँ। अपने सम्पादकीय और लेखकीय दायित्वों से पल्ला झाड़ना भी मेरा उद्देश्य नहीं है, लेकिन मैं यह भी कहना चाहूँगा कि सम्पादक की लाख कोशिशों के बावजूद लगभग हर अंक में वर्तनी और व्याकरण की कतिपय त्रुटियाँ कहीं न कहीं दृष्टिगोचर हो ही जाती हैं। प्रबुद्ध पाठकों को वे अशुद्धियाँ खटकती भी हैं, वे सम्पादक का ध्यान इन अशुद्धियों के प्रति आकृष्ट भी करते हैं और क्यों न करें? यह उनका अधिकार है, लेकिन मैं उन्हें बता दूँ कि सम्पादन से लेकर मुद्रण तक की यात्रा लम्बी होने से चंद त्रुटियाँ प्रकाशन के पश्चात भी रह ही जाती हैं। सम्पादकीय दायित्व बोध और सजगता को नकारा नहीं जा रहा है, बस बताया जा रहा है कि यदि ऐसी कोई गलती आपको दिखे तो आप बताइए अवश्य, लेकिन यह न समझिए कि सम्पादक अपने काम के प्रति सजग, सावधान और सतर्क नहीं है, अखिर वह भी इंसान है और अंग्रेजी में कहते हैं, **To err is human** (गलती करना इंसान का गुणधर्म है)

हमें अपनी बेवाक राय से अवगत कराते रहिए. एक पत्रिका की सफलता का दारोमदार हम सब पर होता है।'' सधन्यवाद:

धर्मवीर भारती जुलाई १९६०

कहना होता है कि आज ६५ वर्ष बाद भी इस सम्पादकीय टिप्पणी की प्रासंगिकता जस की तस बनी हुई है और आगे भी इसके होने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इसके लिखे जाने के बाद भी इस लेख की कमियों और मुद्रण की त्रुटियों को नकारा नहीं जा सकता। इसलिए एक सचेत, जानकार और उदार मना पाठक हमेशा साथ चाहिए।

मोबाइल के इस युग में हाथ से लिखा जाना तो दूर अब कीपेड पर टाइप भी नहीं किया जाता, बोलकर टाइप (मोबाइल से) कराया जाता है। **'Speech to text'** इसलिए अब शुद्ध लिखे जाने से कहीं अधिक शुद्ध बोले जाने की आवश्यकता भी अधिक बढ़ गई है।

'यंत्र के संकेत को भी है समझना
बोलना, लिखना तो है, पर है संभलना ।''

लेख

भाषा के साम्राज्य में शब्दों की आचार संहिता

– डॉ. शोभा जैन, इंदौर

इन दिनों आक्रमक भाषा चलन में है क्या कहा जाय इसे समय के बदलाव के साथ लोकतंत्र में भी भाषा के जायके बदल रहे हैं। हम रोज एक ही स्वप्न देखते हैं दुनिया की सबसे खूबसूरत और सुरक्षित जगह हो तो वह है पाठशाला। जो हर किस्म की नौकरशाही से मुक्त हो नौकरशाही भाषा की तो कम से कम न हो।

हम सूचना के विस्फोट के ऐसे समय में है जहाँ प्रचार के बड़े माध्यमों का भाषा पर दबदबा है। जिसके चलते आज वह जड़विहीन और तात्कालिक होती जा रही है– बोलो और भूल जाओ! भाषा अब कलात्मकता के साथ बनाई जाती है– मैन्युफैक्चर होती है।भवन, भूषा, भोजन सब बदल चुके हैं आज हिन्दी भाषा के विकास को लेकर नवोदित लेखक, बुद्धिजीवी, स्वयं हिंदी के प्राध्यापक, चिंतक सभी चिंतित हैं जब सब किसी एक ही विषय को लेकर चिंतित हैं तब इसका सार्थक समाधान क्यों नहीं ? केवल नारा चस्पा कर देने से, कुछ दिन नारे बाजी कर लेने, एक भीड़ जमा कर भाषण दे देने से, आयोजनों समारोह में मंत्री नेता को सम्मानित कर अथाह पैसा बहा देने का हिंदी के विकास से कोई सम्बन्ध नहीं। हम अंग्रेजी के विरोध में जो उर्जा लगा रहे हैं उतनी उर्जा शक्ति और धन हिन्दी के प्रयोग में अगर खर्च करें तो शायद परिणाम शून्य से उपर मिलते नजर आयें। हिन्दी भाषा और शैली के गिरते स्तर पर भाषा वैज्ञानिक चिंतित है उनकी चिंता का विषय है कि वे लेखक हैं नीति निर्धारक नहीं जो इस दिशा में अपने स्तर पर कोई कदम उठाकर निर्णायक मोड़ ला सके। अभी तक दुनिया के जितने देश सशक्त शक्तिशाली या प्रचलित शब्दों में कहें तो सुपर पॉवर हैं, वे अपनी राष्ट्रीय भाषा में बड़े काम करते देखे जा सकते हैं। हमारी सांस्कृतिक आत्महीनता ने हमें इस दिशा में थोड़ा पीछे छोड़ दिया। दूसरी कसर टेलीविजन पूरी कर देता है जिसमें ऐसी लोकप्रियतावादी चीजें ज्यादा दिखाता है जिसके विज्ञापन से बाजार विकसित हो सके, फिर उसकी भाषा चाहे जो भी हो। केवल माल बेचने और गाँव–कस्बों में नये बाज़ार बनाने के लिए हिन्दी का जिस सुविधा के साथ प्रयोग हो रहा है, वह एक तदर्थ और व्यावहारिक उद्देश्य के लिए है, किसी व्यापार आदर्श, राष्ट्र निर्माण या मूलगामी परिवर्तन के लिए नहीं। कारोबार में भी किसी उच्च प्रशासनिक बैठक का वार्तालाप हिन्दी में नहीं होता, विज्ञापन एजेंसियों में सारे विज्ञापन पहले अंग्रेजी में बनते हैं, बाद में जैसे–तैसे उनका कामचलाऊ हिन्दी में अनुवाद कर दिया जाता है। अब स्थिति ये है कि भाषा के साम्राज्य में शब्दों की सीमा और अक्षरों की आचारसंहिता ने वर्तनी में इन दिनों नए शब्द सर्वमान्य प्रचलित परम्परा बनकर आ गए। या यूं भी कह सकते हैं हिंदी के घर में अंग्रेजी के आगत अतिथि के रूप जमात लगाकर बैठे हैं। इन शाब्दिक अतिथियों को घर से बाहर का रास्ता दिखाने के लिए हिंदी दिवस पर अक्सर लम्बे लम्बे भाषण दिए जाते रहे हैं देश भर के लगभग सभी अख़बारों में इन्हें अंग्रेजों भारत छोड़ो की तरह अंग्रेजी घर छोड़ो के संवादात्मक असफल निवेदन किये जाते रहे हैं।

दूसरी बात बोलियों पर कोई बात ही नहीं करता। यदि हिंदी को वास्तव में एक जीवंत भाषा बना कर

रखना है, तो शब्दों का लेन-देन पहले अपनी बोलियों व फिर भाषाओं से हो, वरना हिंदी एक नारे, सम्मेलन, बैनर, उत्सव की भाषा बनी रहेगी।

जब हम हिंदी में संप्रेषण के किसी माध्यम की चर्चा करते हैं, उस पर प्रस्तुत सामग्री पर विमर्श करते हैं, तो सबसे पहले गौर करना होता है कि समीचित माध्यम को पढ़ने-देखनेवाले कौन हैं, उनकी पठन क्षमता कैसी है और वे किस उद्देश्य से इस माध्यम का सहारा ले रहे हैं।

विद्यानिवास मिश्र ने १९९८ में एक किताब लिखी थी- 'सपने कहाँ गए'। यह किताब एक तरह से आज़ादी के पचास वर्षों का लेखा-जोखा है,

विद्यानिवास मिश्र जी ने भाषा के प्रश्न पर जो कुछ लिखा है वह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका मानना था कि संविधान सभा में जब भाषा के प्रश्न पर बहस हो रही थी तो उसमें अंग्रेजी कहीं भी नहीं थी। सारा विवाद हिंदी व हिंदुस्तानी के बीच में था और हिंदी के पक्ष में निर्णय हिंदी भाषी सदस्यों के कारण हुआ। यह उन्हें दुर्भाग्यपूर्ण लगता है क्योंकि उनके अनुसार यह हिंदी के उदार मन की हार थी। इस संदर्भ में उनका यह कथन है कि अगर आचार्य नरेंद्र देव और जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव को मान लिया जाता और हिंदुस्तानी को देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया जाता (जिसे देवनागरी लिपि में लिखा जाना था) तो संभवत उस दिन से हिंदुस्तानी चल पड़ी होती और धीरे-धीरे वह ऐसी भाषा में ढल जाती जिसमें सहज रूप से संस्कृत के शब्द आ ही जाते।

देश की जनता में एकता का मंत्र फूंकने का संकल्प इस दौर में धराशायी हो गया। भाषा का प्रश्न एक बड़ा मुद्दा था। उनके अनुसार दूसरा बड़ा मुद्दा था भाषा के आधार पर राज्यों का गठन किया जाना।

वह स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि हिंदी साहित्य का इतिहास खड़ी बोली का इतिहास नहीं है। हिंदी साहित्य का इतिहास ब्रज, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, मैथिली इन सभी भाषाओं में जो साहित्य रचा गया सार्वदेशिक भाव से रचा गया वह है हिंदी साहित्य का इतिहास। वे इस बात का उल्लेख करते हैं कि जब एक साथ आदमी तीन-तीन भाषाएँ कुशलता के साथ सीखता है तो सभी भाषाएं समृद्ध होती हैं वे इस बात पर अफसोस व्यक्त करते हैं भाषा के प्रश्न को आज हमने ऐसा प्रश्न बना दिया है कि हम कुछ कर ही नहीं सकते, हम चुपचाप केवल बैठकर देख सकते हैं ।

कहने का अर्थ लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की भाषा और भाषा की मर्यादा भी उतना ही महत्वपूर्ण विषय है जितना चुनाव में वोट डालना। साहित्य में जो भाषा मानव को संस्कारित करती है, राजनीति में वही अपनी शुचिता क्यों खो देती है क्या यह कुशल राजनीतिज्ञों के दायित्व का हिस्सा नहीं है? इस विचारणीय विषय को इस बार चुनावी परिणामों के साथ ही अमल में लाया जाय तो लोकतंत्र में बहुत कुछ खोने से बचाया जा सकेगा ।

महादेवी वर्मा की जयन्ती पर अभिवादन!

- जन्म : २६ मार्च १९०७
- जन्मस्थान : फर्रुखाबाद
- प्रमुख कृतियां : निहार,रश्मि, नीरजा, संध्यागीत, दीपशिखा, यामा आदि।
- सम्मान : १९५६ में 'पद्मभूषण'।
  * यामा के लिए १९८३ में ज्ञानपीठ सम्मान।
  * सक्सेरिया, मंगलाप्रसाद, भारत-भारती जैसे प्रतिष्ठित कई सम्मान।
- महाप्रयाण : ११ सितंबर १९८७

उपनामों से प्रसिद्ध साहित्यकार

ओमप्रकाश शिव, नागपुर

साहित्यकारों व लेखकों में उपनामों से साहित्य-सृजन करने की प्रवृत्ति कोई नई बात नहीं है। किसी भी भाषा का रचनाकार कहीं न कहीं उपनाम से जुड़ने का प्रयास जरूर करता है। जो रचनाकार अपने उपनामों से प्रसिद्ध हुए हैं, उनकी तथा-कथा पाठकों से हमेशा दूर ही रही है। आधुनिक हिन्दी के कुछ प्रमुख बहुचर्चित साहित्यकार जो अपने उपनामों से जाने जाते हैं उनमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रेमचन्द, अज्ञेय, उग्र, नागार्जुन, नवीन, दिनकर, रेणु, प्रदीप आदि प्रमुख है। कथाकार प्रेमचन्द (१८८०-१९३६) का असली नाम धनपतराय था जो कि प्रारम्भ में उर्दू में नवाबराय के नाम से ही प्रकाशित हुआ था। अंग्रेजी सरकार ने 'सोजे वतन' की प्रतियाँ जब्त करके जला डालीं। इस घटना के बाद उन्होंने अपना लेखन-कार्य नवाबराय नाम के बदले स्वयं 'प्रेमचन्द' उपनाम से प्रारम्भ किया और आज यह नाम हिन्दी-साहित्य के बैनर का प्रमुख और आकर्षक नाम बन गया है।

हिन्दी के साहित्यकारों में 'अज्ञेय' का नाम बहुपरिचित है। इनका पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन शास्त्री (१९११-१९८७) है। उनका उपनाम 'अज्ञेय' ही साहित्य जगत में प्रचलित है। उन्हें यह नाम कैसे मिला, इस सम्बन्ध में उनका कथन है- ''अज्ञेय नाम मैंने अपने लिए नहीं चुना। वह संयोग से ही मुझे मिल गया। आरम्भ की कुछ रचनाएँ जेल से छिपाकर बाहर भेजी गई थीं और ये मेरे जेल में रहते ही छपीं। प्रेमचन्द जी पत्रिका के सम्पादक थे। जैनेन्द्रजी के माध्यम से मेरी पांडुलिपि प्रेमचन्द के पास पहुँची।' प्रेमचन्दजी ने अज्ञात नाम लेखक की रचनाएँ छापने से पहले जैनेन्द्र कुमार जी से पूछा था कि लेखक का नाम बताओ, तो जैनेन्द्र जी ने उनसे कहा- ''लेखक का नाम तो नहीं बताया जा सकता, वह तो 'अज्ञेय' है। जैनेन्द्रजी की यह बात सुनकर प्रेमचन्दजी ने कहा- ''तो मैं इसी नाम से कहानी छाप दूँगा।'' और तबसे वात्स्यायन जी की रचनाएँ 'अज्ञेय' इस उपनाम से ही प्रकाशित होने लगी।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' (१९००-१९६७) का नाम हिन्दी साहित्यकारों के बीच क्रांतिकारी लेखक के रूप में पहचाना जाता है। स्वाधीनता आन्दोलन के प्रहरी को जीवन में अनेक विवादास्पद कड़वे दौर से गुजरना पड़ा। इनके लगभग एक दर्जन भाई-बहनों के बचपन में ही किन्हीं कारणों से असमय निधन से माता-पिता को घोर निराशा हुई। किन्तु जब इनका जन्म हुआ तो यह बालक जीवित रहे इसी उद्देश्य से तत्कालीन लोक -विश्वासों के अनुसार पैदा होते ही इन्हें किसी दूसरे को एक टके में बेच दिया गया था, इसी कारण इनका नाम 'बेचन' पडा। उग्रता तो इनके स्वभाव का विशेष गुण था। इनकी लेखनी का उग्र तेवर, यथार्थवादी सोच तथा स्वच्छंदतावादी मिजाज के कारण इन्होंने अपना नाम 'उग्र' रखना पसंद किया। इसी से उनका नाम साहित्य क्षेत्र में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रसिद्ध हुआ।

बिहार के मधुबनी जिले के सतलखा गांव में जन्मे वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' (१९११-१९९८) हिन्दी के जनकवि और मानवतावादी कथाकार के रूप में प्रख्यात हैं। फक्कडी मिजाज के कारण साहित्य जगत में इन्हें 'बाबा' के सम्बोधन से ही पहचाना जाता है। बाबा नागार्जुन के नाम से साहित्य में अपनी अमिट छाप छोड़नेवाले बाबा के घरेलू नाम 'ढक्कन मिसिर' है। जब सन् १९३६ में वे श्रीलंका के

विद्यालंकार परिवेण में पाली और बौद्ध -दर्शन के आचार्य एवं प्रशिक्षु के रूप में गए तब उन्होंने वहाँ अपने लिए 'नागार्जुन' उपनाम का वरण किया।

वस्तुत: हिन्दी में खडी बोली के साहित्यिक सृजन-काल से ही साहित्यकारों व हिन्दी के विद्वानों में उपनाम रखने का चलन प्रमुखता से दिखाई देता है। उसी समय से पाठक इन लेखकों को उनके असली नाम के स्थान पर उपनामों से अधिक जानने लगे थे। कुछ लेखकों व कवियों के उपनाम इतने लोकप्रिय हुए हैं कि उनका मूलनाम ही लुप्तप्राय प्रतीत होता है। सन् १८२३ में काशी में जन्मे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' के उपनाम से प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने प्रारंभिक खड़ी बोली, हिन्दी के विकास तथा नागरी लिपि के अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष किया। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध' (१८६५-१९४७) उपनाम से जाने जाते हैं। प्रौढ गद्यकार के रूप में उनकी ख्याति है। ब्रजभाषा काव्य परम्परा के उत्कृष्ट कवि जगन्नाथदास रत्नाकर (१८६६-१९३२) तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' उपनाम से प्रख्यात हुए, जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को एक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों तथा लेखकों के नामों के साथ जिनके उपनाम सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए हैं वे इस प्रकार हैं जयशंकर शाहू 'प्रसाद, रामधारी सिंह 'दिनकर', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', मन्नन द्विवेदी 'शांतिप्रिय द्विवेदी', हरिप्रसाद 'वियोगी हरि', मदनमोहन गुगलानी 'मोहन राकेश', द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बालस्वरूप भटनागर 'राही', भारतभूषण 'सरोज', लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', हरिवंशराय श्रीवास्तव 'बच्चन', शुकदेवप्रसाद तिवारी 'विनयमोहन शर्मा', धर्मवीर सक्सेना 'धर्मवीर भारती', कैलास 'कमलेश्वर', कन्हैयालाल तिवारी 'नंदन', गोपालदास सक्सेना 'नीरज', गंगाप्रसाद उनियाल 'विमल', सुदामाप्रसाद पाण्डेय 'धूमिल', रमेशचन्द्र मटियानी 'शैलेश मटियानी', रामरिख बंसल 'रामरिख मनहर', श्रीराम वर्मा।

आगरा में जन्मे रांगेय राघव प्रसिद्ध कथाकार के रूप में जाना-पहचाना नाम है। इनका मूल नाम तिरूमल्ल नंबाकम वीर राघव आचार्य था। उन्होंने अपना साहित्यिक नाम 'रांगेय राघव' रखा। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक व साहित्यकार राजेन्द्र अवस्थी प्रारम्भ में 'तृषित' उपनाम से लिखते थे। नागपुर में पत्रकारिता के प्रारम्भिक दिनों में उनकी कहानियाँ 'रेखा' नामक मासिक में प्राय: इसी उपनाम से छपती रहीं। हिन्दी की लेखिकाएँ जैसे गौरा पंत 'शिवानी', उषा सक्सेना 'प्रियम्वदा', महेन्द्रकुमारी 'मन्नू भंडारी', सरोजनी मलिक 'प्रीतम', निर्मला चांदेकर 'नीर शबनम' इन उपनामों से पहचानी जाती हैं।

हिन्दी के हास्य-व्यंग्य के रचनाकारों के नाम भी बहुत रोचक और गुदगुदाने वाले प्रतीत होते हैं। हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य के लेखन को जिन्होंने प्रथमत: साहित्यिक गरिमा प्रदान की है, उनमें वाराणसी के कृष्णदेव प्रसाद गौड (१८९५-१९६८) अग्रणी हैं। उनका 'बेढब बनारसी' उपनाम हिन्दी के गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में बेहद चर्चित है। प्रभुलाल गर्ग 'काका हाथरसी, चंद्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका', काशीनाथ उपाध्याय 'बेधडक बनारसी', सुशीलकुमार चड्ढा 'हुल्लड मुरादाबादी', श्यामलाल शर्मा 'अल्हड बीकानेरी', डॉ. अजयकुमार श्रीवास्तव 'चकाचौंध ज्ञानपुरी', डॉ. मनोहरलाल गोयल 'ताऊ राजस्थानी', मधुसूदन पांडेय 'मधुप पांडेय' गुरू सक्सेना 'सांड नरसिंगपुरी' आदि हास्य-व्यंग्य रचनाकारों के उपनाम उनके निवास या जन्मस्थल के नाम के साथ जुडे हुए हैं। बालसाहित्य के लेखक गुलाबचन्द 'जयंत निर्वाण' उपनाम से लिखते रहे।

अपने नामों के आगे उपनाम लिखने का चलन तो सर्वत्र देखने में आता है, किन्तु नाम के पूर्व उपनाम लिखने का शौक भी कम चौंकाने वाला नहीं है।हिन्दी

साहित्य के युगनायक 'भारतेन्दु' हरिश्चंद्र का उपनाम 'भारतेन्दु' था जिस उन्होंने अपने नाम से पहले प्रयोग किया। प्रख्यात हिन्दी लेखक व इतिहास अन्वेषक जैमिनी कौशिक बरुआ तो अपने नाम के पूर्व 'ऋषि' उपनाम लिखते थे। 'ऋषि' जैमिनी कौशिक बरूआ के अनेक मौलिक ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्य-निधि हैं।

अलग अलग प्रसंगों में काल्पनिक नामों से हिन्दी में लेखन करनेवाले लेखकों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। पं. माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएँ 'एक भारतीय आत्मा' के उपनाम से प्रकाशित होती थीं। मैथिलीशरण गुप्त 'मधुप' नाम से भी लिखते थे। डॉ. सम्पूर्णानन्द का साहित्यिक लेखन और अध्ययन प्रगाढ़ था। स्वाधीनता आन्दोलन के समय अंग्रेजी शासन के खिलाफ राजनैतिक विषयों के आलेख वे 'कापालिक' तथा 'सुखाखिल' इन काल्पनिक नामों से लिखते थे। आधुनिक हिन्दी समीक्षा के विद्वान डॉ. रामविलास शर्मा प्रारम्भ में 'अगिया बैताल' उपनाम से कविताएँ लिखते थे।

महाराष्ट्र के सातारा में जन्मे हिन्दी के अनन्य सेवक 'काका कालेलकर' का नाम आज भी सभी की जुबान में मिश्री की तरह घुला हुआ है, जब कि उनका पूरा नाम था दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन (१९०३-१९६३) के बचपन का नाम केदारनाथ पांडेय था। जब वे घर छोडकर साधु बन गये तब इनका नाम रामोदरदास था। सन् १९२८ में वे श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाते थे। सन् १९३० में विद्यालंकार विहार में नायकपाद के उपाध्यायत्त्व में उनका नया नामकरण हुआ। इनसे इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की और उपसंपदा हुए तथा उन्हें 'राहुल' नाम दिया गया। अपने नाम के बारे में उन्होंने लिखा है, कि 'मैं लंका में रामोदार स्वामी के नाम से प्रसिद्ध था और लंका छोडने से पूर्व ही अपने गोत्र को जोड़कर अपने को रामोदार सांकृत्यायन बना चुका था। मैं समझता था वही नाम बना रहेगा क्योंकि इस नाम से मैं साहित्यिक क्षेत्र में अवतीर्ण हो चुका था और प्रव्रज्या सरकार शुरू होने से चंद ही मिनट पहले नायकपाद की आज्ञा हुई, नये नामकरण की। समय होता तो मैं समझाने की कोशिश करता, किंतु अब कुछ कहना आज्ञा-भंग होता। नाम शायद एकाध और पेश किये गये थे, किंतु मैंने रामोदर के रा की साम्यता को देखते हुए राहुल नाम का प्रस्ताव किया, वह स्वीकृत हुआ। इसप्रकार राहुल सांकृत्यायन नाम से मैं प्रव्रजित हुआ। वे विश्व की ३६ भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। उनकी प्रगाढ़ तर्कशक्ति एवं अनुपम ज्ञान संपदा से प्रभावित होकर 'काशी पंडित सभा' ने उन्हें 'महापंडित' की उपाधि से अलंकृत किया। इसप्रकार उत्तरप्रदेश आजमगढ़ के पन्दहा गांव में जन्मे केदारनाथ पांडेय नामक यह प्रतिभावान बालक हिन्दी साहित्य ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य में अपने उपनाम और उपाधि के संयुक्त मेल से बने 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन' के नाम से विख्यात हुए।

इसीप्रकार चंडीगढ के सुहाना गांव में जन्मे हरिनामदास (१९६५-१९८८) का 'भदन्त आनन्द कौसल्यायन' तक का सफर भी रोचक है। बचपन से ही प्रखर और कुशाग्र बुद्धि के इस युवक की प्रतिभा की जानकारी जब श्रीलंका में राहुल सांकृत्यायनजी को मिली तो उन्होंने इन्हें श्रीलंका में आने का निमंत्रण दिया। इस समय इनकी उम्र २३ वर्ष की थी। वही राहुलजी ने हरिनामदास को परिव्राजक के कपड़े दिये और उनका नाम बदलकर विश्वनाथ रखा। यही पर सन १९२८ में विद्यालंकार बिहार के प्रमुख लुनुपोकुने धम्मानंद महास्थविर से उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की और उन्हें 'आनन्द' नाम दिया गया। बौद्ध साधु को 'भदन्त' कहा जाता है।हरिनामदास कौसल गोत्र के होने से वे 'कौत्सल्यायन' कहलाये। इसप्रकार वे 'भदन्त आनन्द कौसल्यायन' के नाम से विख्यात हुए और हिन्दी की सेवा भी इसी नाम से करते रहे।

'मैंया, मैं नहिं माखन खायो'

(वात्सल्य भक्ति की अनूठी काव्याभिव्यक्ति !)

जया परांजपे, पुणे

सूरदास के इस शीर्षक के दो पद हैं जो कईं महान गायकों की आवाज में भारतीय जनमानस में रच-पच गये हैं।

सूरदास हिंदी की कृष्णभक्ति परंपरा के मूर्धन्य कवि हैं। आराध्य कृष्ण की लीलाभूमि-ब्रजमंडल सूरदास की सृजनभूमि रही है। कृष्ण मंदिर की नित्य लीलाओं में लीन सूरदास ने जो अनूठा काव्य संसार रचा, उसमें 'वात्सल्यभक्ति' के पद अपनी विशेष पहचान रखते हैं। उपरोक्त पद उन्हीं में से हैं।

माता यशोदा, पिता नंद तथा समस्त गोकुलवासियों के हृदय में बालक कृष्ण की मनभावन मूर्ति और उसकी लीलाओं को देखकर उत्पन्न सहज स्नेह का इतना सूक्ष्म, मनोरम और संवेद्य चित्रण सूरदास करते हैं कि यह अशेष स्नेहभाव 'वात्सल्य रस 'उपाधि प्राप्त कर लेता है और स्वयं सूरदास वात्सल्यरस के सम्राट! सूरदास विरचित वात्सल्य चित्रण के पदों में से उपरोक्त पद अत्यधिक जनप्रिय हैं।

पद का प्रसंग सुपरिचित है-कृष्ण की माखनचोरी जैसी शिकायतें लेकर गोपियाँ अक्सर यशोदा के पास पहुँचती हैं पर माता यशोदा अपने लाडले को भला चोर कैसे मान सकती है?उसका मन कहता है कि ये तो गोपियों का कृष्ण को देखने का बहाना है। लेकिन एक दिन जब कृष्ण माखनचोरी करते हुए रंगेहाथ पकड़ा जाता है तब मां को मानना पडा, कहने लगी अब मैं तुम्हारे दांव समझ गयी। अब बालक कृष्ण मासूम सी दलिलें देता है-मैंने माखन नहीं खाया है, तू तो जानती है कि मैं तो सुबह होते ही गैये चराने गया और शाम को लौटा ,मैं तो इतना छोटा हूँ मेरे हाथ छींके तक कैसे पहुँच सकते हैं,मेरे सखाओं नें ईर्ष्यावश मेरे मुँह पर माखन लिपटा दिया और तुम इतनी भोली कि उनके कहने में आ गयी। या लगता है कि तुम्हारे मन में मेरे बारे में परायापन उपजा है,मैं तुम्हारा अपना बेटा नहीं हूँ न-अब ये लकुटि, कंबल ले लो मुझे नहीं चाहिए कुछ-यशोदा माता हंसते हंसते बालक कृष्ण को गले लगा लेती है।

वात्सल्य वर्णन के अन्य पदों के समान इस पद की व्याख्या का एक पहलू है आद्यबिंब और मिथक-पद का प्रभाव पाठक के मन में बसे मातृबिंबात्मक वात्सल्य भाव को झंकृत कर उस भाव की 'अपूर्व पूर्णता (युनिक फुलनेस)' की प्रतीति कराता है। यह वात्सल्यभाव जुंगप्रणित 'महामातृबिंब (मदरआर्केटाइप)' है जिसे उसने स्त्रैण सत्ता का उदात्त एवं उत्कृष्ट रुप माना है। इस बिंब से किसी शिशु के प्रति व्यक्ति की सहज सहसंवेदना, अशेष स्नेहभाव, अकुंठ प्यार,समस्त कल्याणकामना,अभय एवं पोषणदान की भावना द्योतित होती है। सूरदास की यशोदा उस मातृत्व का प्रतीक है। सूरदास अपने पदों में इस आद्यबिंब के इर्द-गिर्द श्रीमद्भागवत के संदर्भों के आधार पर बालक कृष्ण, नंद-यशोदा तथा गोकुलवासियों के कथा-सूत्रों का(मिथकों का)अनूठा काव्यसंसार रचते हैं, इस काव्यसंसार में गोकुल-वृंदावन अपनी समस्त सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं सहित मिथकीय भूगोल के रुप में उभरता है और भावसंसार में विद्यमान हैं बालक कृष्ण की बाललीलाएँ,उनके प्रति गोकुलवासियों का अनुराग और भक्ति का अलौकिक आनंदोत्सव! इस तरह ये पद अपनी पृष्ठभूमिगत सांस्कृतिक एवं मिथकीय स्तर पर आस्वाद्य बन जाते हैं वहाँ दूसरी ओर आद्यबिंब की स्थलकालातीत भावभूमि पर सर्वसंवेद्य बनते हैं।

मातृत्व के साथ ही पूरा गोकुल एक परिवार के

रूप में जिस निरपेक्ष प्रेम और आत्मीयता से जुड़ा हुआ है उसका अपना अलग महत्व है। पारिवारिक एवं आम मानव-संबंधों के विघटन और घोर आत्मकेंद्रित मानसिकता के तथा सह-अनुभूति, स्नेह और संवेदना के क्षीण होते जा रहे आज के परिवेश में मनुष्य मनुष्य के बीच के सौहार्द को रेखांकित करता है।

सूरदास के पद उनकी अनन्य भक्तिभावना की उत्कट-स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति होने के कारण उपरोक्त पदों में 'वात्सल्यभक्ति' का सहज उन्मेष पाया जाता है। वात्सल्यभक्ति में आराध्य को बालक रूप में भजा जाता है तभी सूरदास बालक कृष्ण के वचन-व्यवहार से प्रमुदित यशोदा का परमानन्द ब्रह्मा और शिव को भी दुर्लभ मानते हैं। इस भक्ति की अन्य विशेषता कि यह सामान्य गृहस्थ जीवन में परमात्मा का संधान करती है, इसलिए सर्वजनसुलभ है।

इसका लौकिक संदर्भ यह है कि छोटा बच्चा या बालक घर में होने मात्र से घर का वातावरण आनंद और उल्लासपूर्ण बन जाता है।बालक की छवि,हंसना-किलकना, बोलना-खेलना देखकर कोई भी व्यक्ति आकर्षित और मोहित हुए बिना नहीं रह सकता है। बालक के प्रति यह सहज मोहाकर्षण ही है जो ये पद पढ़ने-सुनने वाले को पुनःप्रत्यय का सुखद आनंद देते हैं।

इस आशय की अभिव्यक्ति का काव्यरूप भी सूरदास की अद्वितीय काव्यप्रतिभा का परिचायक है।

संगीतात्मकता (गेयता), आत्माभिव्यंजकता और सघन भावभूमि इन पदों को गीतितत्व (लिरिकल इलिमंट) से मंडित करती है।

पदों में अनुस्यूत गोकुल-वृंदावन की भूमि, गैये चराने के लिए मधुबन जाना, छींके पर रखा माखन, दोणा आदि ग्वालसंस्कृति के संदर्भ, कृष्ण की माखन चोरी की घटना, माता यशोदा का भोलापन और ममता, बालक कृष्ण की चतुराई तथा पात्रों के परस्पर संबंध कथा सूत्र हैं। ध्यातव्य है कि ये कथासूत्र यहाँ वर्णन-विवरण और तफ़सिलों की अपेक्षा घटनागत संवेदना को उभारते हैं। इसीलिए मां-बालक संबंधों की भाववृत्ति में परिणत हो जाते हैं। माखनचोरी की प्रमुख घटना की प्रतिक्रिया में यशोदा का बालक कृष्ण की तर्ककुशलता और चतुराई से विमोहित होना,उसके प्रति क्षमाशील होना तथा 'जान परायो जनो 'से मन ही मन आहत होना पाठकों को रोमांचित करता है।कथात्मकता का काव्यानुभव में परिणत होना और ऐसे काव्यात्मक प्रसंगों की उद्भावना सूरदास की अद्भुत प्रतिभा के द्योतक हैं। कृष्ण के बालकोचित तर्क और व्यवहार बालमनोवृत्ति के परिचायक हैं जो पाठक को आल्हादित करते करते हैं।हरबर्ट रीढ के अनुसार यह स्थल कविता में विचार का और तफसिलों का 'इंटेनसिटी ऑफ इमोशन 'परिणत होना है।

इस कथात्मकता और काव्यात्मकता के साथ भावव्यंजना में सहायक नाट्यतत्व संरचना की अन्य विशेषता है। 'जान परायो जानो' कथन में यशोदा के मातृत्व में आशंका उसके लिए अप्रत्याशित पीडा की उद्भावना है। इसमें भावगर्भ नाट्य समाहित है। कृष्ण के पूरे कथन में मार्मिक अर्थसंकेत हैं जैसे-यशोदा कृष्ण की जन्मदात्री न होने की सचाई, इस सचाई का सोद्देश्य उद्घाटन,कृष्ण की चतुराई कि बाकी सारे तर्क भले ही निष्फल हो जाएँ, यह जरूर काम करेगा। कृष्ण के बाल-मनोभाव और चतुराई से प्रमुदित होकर 'बिहंसी' एवं 'कंठ लगायो' की यशोदा की प्रतिक्रिया भावव्यंजकता का अद्भुत क्षण है जहाँ माखनचोरी की भूल दोनों पक्षों से स्वीकृत होते-होते माता के अकुंठ प्यार और ममता में विलयित हो जाता है और इसके साथ सूरदास का कथन आता है-

बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ

सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव-बिरंची नहिं पाययौ। जिससे भक्त प्रसन्न चित्त हो जाता है।

इसके साथ संवाद, संबोधन, चरित्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया में भी नाट्यतत्व विद्यमान है। पद में बालक कृष्ण माखन से लिपटा मुँह पोंछकर दोना पीछे छुपाता

है और रूठकर लकुटि –कमरिया रख देता है।

पद में अधिकतर कृष्ण संवाद बनाये रखता है ,यशोदा अपनी भावभंगिमा एवं क्रियाकलापों से न केवल संवाद में अपनी उपस्थिति दर्ज करती है बल्कि भावाभिव्यक्ति में अहम भूमिका निभाती है। संवादशैली की मार्मिकता में भाषाप्रयोग भी लक्षणीय है। ब्रजभाषा की सरसता,लालित्य, मधुरता और लयात्मकता वात्सल्यरस के लिए अनुकूल है। सूरदास की प्रतिभा के संस्पर्श से उपरोक्त संदर्भ में निवेदन की आम गद्यलय काव्यलय से भारित हो जाती है। अपनी व्यंजकता, संक्षिप्त–सघनता, आवर्तनशीलता और उच्चारण, विरामचिह्न, स्वरों का उतार–चढ़ाव के सटीक प्रयोग से भाषा अपने में काव्य और नाट्य को समेटकर सहज संवेद्य और संप्रेषणीय बनती है।

संक्षेप में मिथकीय सांस्कृतिक चेतना, आद्यबिंब की स्थलकालातीत भावस्पर्शिता, बालकमानस संसार की मुग्धता, भक्ति की प्रसन्नता, संगीत की मुग्धतन्मयता, काव्य–नाट्य एवं कथागत भावसंवेद्यता, संवाद की प्रभावपूर्ण संप्रेषणीयता इन सबको समेटती भक्त सूरदास की अलौकिक प्रतिभा के कारण वात्सल्य चित्रण के पद हिंदी की कालजयी रचनाओं में अपनी पहचान बनाते हैं।

वसन्त के संग–मन की उमंग

– डॉ. मंजू चौपड़ा,पुणे

वसंत के आते आते ही मन उमंग और उल्लास से परिपूर्ण होने लगता है। पपीहे का राग प्रेम के रंग में ढल कर हल्की हंसी बिखेर रहा है और पीहू पीहू की रट लगाए मदमाती ऋतु को प्यार की पहचान दे रहा है। सरसों तो पूरी की पूरी पीत रंग की चुनरिया ओढ़े सज उठी है। खेत खलिहानों में मंथर गति से चलती बयार के डैनों पर सवार अठखेलियां करता फागुनराग अपने साथ मनुहार की बेला का उपहार लाया है। फल स्वरूप गांव गांव डप की थाप पर थिरकते तन श्रृंगार के गीत गाने लगते हैं। कहीं दूर अलगोजे पर कोई गा रहा है फागुनी गीत और आसमान से उतर रहा है इस मदमस्त मधुमास का मादक संगीत। कौन सा फूल या कली इससे अछूती रही है और प्रस्फुटित हो सुगंध से सराबोर ना हुई है। गांव, डगर, चौपालों में जन–जन के मन में रंजकता के रंग मस्ती में डूब गए हैं। इसी का सानिध्य पा माधवी और मोगरे की जुगलबंदी का क्या कहना और मौलश्री भी अपने आप झाड रही है। अचेतन पहाड़ी भी नए उल्लास से नहा उठी है। आम बोंरा रहा है और नए पत्तों की पांत जरा सी हवा से भी हिल डुल कर लहक–लहक जाती है। प्रेम का पहाड़ा याद करने की उम्र में लहलहाते खेतों ने द्वार पर दस्तक दी है, कहां नहीं हैं कोई कह नहीं सकता। मस्ती के आलम का नशा नव संचार कर रहा है। धरती के, वृक्षों के पोर–पोर चटकने लगे हैं। उज्ज्वल वासंती वातावरण और चारों तरफ शीतल–मंद –सुगंध से पूरित पवन की अठखेलियों के कारण रंगीनियाँ और भी बढ़ जाती हैं। जब फागुनी बयार चलती है तो तन मन भी फागुनी होकर नाचने लगता है और फिर रंग रंगीले, चटकीले रंगों से भिगोती इठलाती, इतराती, बलखाती होली फिर से द्वार खटखटाने पहुंचती है। चौपाल में भी खनक की आवाज गूंज उठती है, ढोलक की थाप, ढोल की पद चाप और झांल–मंजीरों की झंकार से वातावरण से वातावरण खुशियों की डोर लिए झूम उठता है। मस्तों की टोली हंसी–ठिठोली करती इधर–उधर घूम रही है। बच्चे बूढे, जवान सभी होली का स्वागत बिना किसी भेदभाव के विविध रंगों में सजकर, संगीत की स्वर माधुरी और नृत्य की थिरकन के साथ मस्ती के आलम में खो जाते हैं। नीले–पीले, लाल–गुलाबी रंगों की बहार आई है।

(पृष्ठ क्र. १८ पर....)

भाषा प्रसंग

बोलियों के साथ ही संवरेगी हिन्दी

– पंकज चतुर्वेदी, दिल्ली

सितम्बर का महीना विदा होते बादलों के साथ-साथ विदा होने के भय से ग्रस्त हिंदी की चिंता का होता है। हिंदी लोक भाषा है और उसे राज भाषा कैसे बनाया जाए , इस अंधी दौड़ में देश की बोलियाँ लुप्त हो रही हैं और हिंदी में उनका समृद्ध शब्द संस्कार संहित होने के बनिस्पत यूरोपीय भाषाओँ के शब्द हिंदी में जगह बनाते जा रहे हैं। सन १८५७ के आसपास हमारी जनगणना में महज एक प्रतिशत लोग साक्षर पाए गए थे, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उससे पहले भाषा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, आयुर्वेद ज्योतिष अंतरिक्ष का ज्ञान हमारे पास नहीं था। वह था- देश की बोलियों में, संस्कृत, उससे पहले प्राकृत या पालि में जिसे सीमित लोग समझते थे, सीमित उसका इस्तेमाल करते थे। फिर अमीर खुसरो के समय आई हिंदी, हिंद यानि भारत के गोबर पट्टी के संस्कृति, साहित्य व ज्ञान की भाषा, उनकी बोलियों का एक समुच्चय। इधर भक्ति काल का दौर था। हिंदी साहित्य का भक्ति काल १३७५ ई. से १७०० ई. तक माना जाता है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी उसकी लोक बोलियों में साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएँ इस युग में प्राप्त होती हैं। वास्तव में यह हिंदी साहित्य नहीं, बल्कि हिंदी या देश की अन्य लोक बोलियों की रचना का काल था। अब सरकारी हिंदी सप्ताह या पखवाड़ा की चिंता है कि दफ्तरों में हिंदी कैसी हो?

आज जिस हिंदी की स्थापना के लिए पूरे देश में हिंदी पखवाड़ा मनाया जाता है उसकी सबसे बड़ी दुविधा है मानक हिंदी यानि संस्कृतनिष्ठ हिंदी। सनद रहे संस्कृत का स्वभाव शास्त्रीय है और दरबारी, जबकि हिंदी का स्वभाव लोक है और विद्रोही। ऐसा नहीं कि आम लोगों की हिंदी में संस्कृत से कोई परहेज है। उसमें संस्कृत से यथावत लिए गए तत्सम शब्द भी हैं तो संस्कृत से परिशोधित हो कर आए तत्दव शब्द जैसे अग्नि से आग, उष्ट से ऊंट आदि। इसमें देशज शब्द भी थे, यानि बोलियों से आए स्थानीय शब्द और विदेशज भी जो अंग्रेजी, फारसी व अन्य भाषाओं से आए। आज भी और कल भी जब-जब प्रतिरोध, असहमति की बात होगी लोक बोली और उससे जुड़ी हिंदी ही काम आएगी। कई बार लगता है कि सरकारी हिंदी का प्रयास भी वही हैं जो अंग्रेजी का था, आम लोग उसे समझ-बूझ ही न सकें।

संचार माध्यमों की हिंदी आज कई भाषाओं से प्रभावित है। विशुद्ध हिंदी बहुत ही कम माध्यमों में है। दृश्य और श्रव्य माध्यमों में हिंदी की विकास-यात्रा बड़ी लंबी है। हिंदी के इस देश में जहां की जनता गांव में बसती है, हिंदी ही अधिकांश लोग बोलते-समझते हैं, इन माध्यमों में हिंदी विकसित एवं प्रचारित हुई है। इसके लिए मानक हिंदी कुछ बनी है। ध्वनि-संरचना, शब्द संरचना में उपसर्ग-प्रत्यय, संधि, समास, पद संरचना, वाक्य संरचना आदि में कुछ मानक प्रयोग, कुछ पारंपरिक प्रयोग इन दृश्य-श्रव्य माध्यमों में हुए हैं, किंतु कुछ हिंदीतर शब्दों के मिलने से यहाँ विशुद्ध खड़ी बोली हिंदी नहीं है, मिश्रित शब्द, वाक्य प्रसारित, प्रचारित हो रहे हैं।

यह चिंता का विषय है कि समाचार पत्रों ने अपने स्थानीय संस्करण निकालने तो शुरू किए लेकिन उनसे स्थानीय भाषा गायब हो गई। जैसे कुछ दशक पहले कानपुर के अखबारों में गुम्मा व चुटैल जैसे शब्द होते थे, बिहार में ट्रेन-बस से ले

कर जहाज तक के प्रारंभ होने के समय को ''खुलने' का समय कहा जाता था। महाराष्ट्र के अखबारों में जाहिरा, माहेती जैसे शब्द होते थे। पंजाब – हरियाणा– हिमाचल के हिंदी मीडिया में स्थानीयता का पुट पर्याप्त होता था. अब सभी जगह एक जैसे शब्द आ रहे हैं। लगता है कि हिंदी के भाषा–समृद्धि के आगम में व्यवधान सा हो गया है। तिस पर सरकारी महकमे हिंदी के मानक रूप को तैयार करने में संस्कृतनिष्ठ हिंदी ला रहे हैं। असल में वे जो मानक हिंदी कहते हैं असल में वह सीसे के लेटर प्रेस की हिंदी थी जिसमें कई मात्राओं, आधे शब्दों के फाँट नहीं होते थे। आज कंप्यूटर की प्रकाशन–दुनिया में लेड–प्रेस के फाँट की बात करने वाले असल में हिंदी को थाम रहे हैं।

स्थानीय बोलियों में प्राथमिक शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि बच्चा अपने कुल–परिवार की बोली में जो ज्ञान सीखता है, उसमें उसे अपने मां–बाप की भावनाओं का आस्वाद महसूस होता है। वह भले ही स्कूल जाने वाले या अक्षर ज्ञान वाली पहली पीढ़ी हो, लेकिन उस पाठ से उसके मां–बाप बिल्कुल अनभिज्ञ नहीं होते। जब बच्चा खुद को अभिव्यक्त करना, भाषा का संप्रेषण सीख ले तो उसे खड़ी बोली या राज्य की बोली में पारंगत किया जाए, फिर साथ में करीबी इलाके की एक भाषा और अंग्रेजी को पढ़ाना कक्षा छह से पहले करना ही नहीं चाहिए। इस तरह बच्चे अपनी शिक्षा में कुछ अपनापन महसूस करेंगे। हां, पूरी प्रक्रिया में दिक्कत भी है, हो सकता है कि दंडामी गोंडी वाले इलाके में दंडामी गोंडी बोलने वाला शिक्षक तलाशना मुश्किल हो, परंतु जब एकबार यह बोली भी रोजगार पाने का जरिया बनती दिखेगी तो लोग जरूर इसमें पढ़ाई करना पसंद करेंगे। इसी तरह स्थानीय आशा कार्यकर्ता, पंचायत सचिव जैसे पद भी स्थानीय बोली के जानकारों को ही देने की रीति से सरकार के साथ लोगों में संवाद बढ़ेगा व उन बोलियों में पढ़ाई करने वाले भी हिचकिचाएंगे नहीं।

यदि हिंदी को वास्तव में एक जीवंत भाषा बना कर रखना है तो शब्दों का यह लेन–देन पहले अपनी बोलियों व फिर भाषाओं से हो, वरना हिंदी एक नारे, सम्मेलन, बैनर, उत्सव की भाषा बनी रहेगी। इसके लिए जरूरी है कि बच्चे की प्राथमिक शिक्षा उसकी अपनी बोली में हो। बच्चा देवनागरी लिपि में लिखना तो सीखे लेकिन उसके पास शब्द भंडार में उसकी अपनी जुबान या बोली के शब्द भी हों।

हिंदी में बोली और भाषा का द्वन्द शिक्षा के प्रसार और स्कूल जाने वाले बच्चों की बढ़ती संख्या और रोजगार के लिए पलायन ने बढ़ाया ही है। संप्रेषणीयता की दुनिया में बच्चे के साथ दिक्कतों का दौर स्कूल में घुसते ही से शुरू हुआ– घर पर वह सुनता है मालवी, निमाडी, आओ, मिजो, मिसिंग, खासी, गढवाली,राजस्थानी , बुंदेली, या भीली, गोंडी, धुरबी या ऐसी ही 'अपनी' बोली–भाषा। स्कूल में गया तो किताबें खड़ी हिंदी या अंग्रेजी या राज्य की भाषा में और उसे तभी से बता दिया गया कि यदि असल में पढ़ाई कर नौकरी पाना है तो उसके लिए अंग्रेजी ही एकमात्र जरिया है – 'आधी छोड़ पूरी को जाए, आधी मिले ना पूरी पाए''। बच्चा इसी दुरूह स्थिति में बचपना बिता देता है कि उसके 'पहले अध्यापक' मां–पिता को सही कहूं या स्कूल की पुस्तकों की भाषा को जो उसे 'सभ्य' बनाने का वायदा करती है या फिर जिंदगी काटने के लिए जरूरी अंग्रेजी को अपनाऊं। स्कूल में भाषा–शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण व पढ़ाई का आधार होती है। प्रतिदिन के कार्य बगैर भाषा के सुचारू रूप से कर पाना संभव ही नहीं होता। व्यक्तित्व के विकास में भाषा एक कुंजी है, अपनी बात दूसरों तक पहुंचाना हो या फिर दूसरों की बात ग्रहण करना, भाषा के ज्ञान के बगैर संभव नहीं है। भाषा का सीधा संबंध जीवन से है और मात्र भाषा ही बच्चे को परिवार, समाज से जोड़ती है। भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक को सोचने–विचारने की क्षमता प्रदान करना, उस सोच को निरंतर आगे बढ़ाए रखना, सोच को सरल

रूप में अभिव्यक्त करने का मार्ग तलाशना होता है। सभी जनजातीय बोलियों में हिंदी के स्वर-व्यंजन में से एक चौथाई होते ही नहीं है। असल में आदिवासी कम में काम चलाना तथा संचयय ना करने के नैसर्गिक गुणों के साथ जीवनयापन करते हैं और यही उनकी बोली में भी होता है। लेकिन बच्चा जब स्कूल आता है तो उसके पास बेइंतिहां शब्दों का अंबार होता है जो उसे दो नाव पर एकसाथ सवारी करने की मानिंद अहसास करवाता है। इस टकराव के बीच हिंदी को न जाने कब अंग्रेजी श्रेष्ठता के ग्रहण से ढँक लेती है। जाहिर है कि इस शिक्षा से पढ़े लोग जिस दफ्तर में जायेंगे , वे भी राज भाषा और लोकभाषा की हिंदी में उलझे रहेंगे।

असल में कोई भी भाषा 'बहता पानी निर्मला' होती है, उसमें समय के साथ शब्दों का आना-जाना, लेन-देन, नए प्रयोग आदि लगे रहते हैं। यदि हिंदी को वास्तव में एक जीवंत भाषा बना कर रखना है तो शब्दों का यह लेन-देन पहले अपनी बोलियों व फिर भाषाओं से हो, वरना हिंदी एक नारे, सम्मेलन, बैनर, उत्सव की भाषा बनी रहेगी। जान लें कि हिंदी का आज का मानक रूप से बुंदेली, ब्रज, राजस्थानी आदि बोलियों से ही उभरा है और इसकी श्री-वृद्धि के लिए इन बोलियों को ही हिंदी की पालकी संभालनी होगी।

(पृष्ठ क्र. १५ से आगे ...)

वसन्त के संग-मन की उमंग

मुट्ठी भर भर अबीर गुलाल की हथेलियां से भरे बादल उधर-इधर उड़ते फिर रहे हैं। गांव-नगर, सडकों गलियाँ, चौबारों में धूम मची है और खिलखिलाती होली आ पहुंची है। टेसू के फूलों से भरे रंगीन हौंदो ने चारों ओर शोर मचाया है और राग रंग बरसाने वाला होली का निराला त्यौहार आ गया है। खुशबू से महकती मेवों से भरी गुजिया की थाली के सौंधेपन से सब का मन ललचाया है और बादाम युक्त केसरियां ठंडाई की ठंडक सबके मन को भाई है। सिलबट्टे पर पिसली भांग कहां पीछे रहनेवाली है उसने भी अपने पहलू खोले हैं। इस ठनक भरे पर्व का अंदाज अनोखा है और सर-सर करती पिचकारी ने सबको स्नेह के रंग से भिगो दिया है। मेलजोल की रोली ने होली को एक नया विश्वास दिलाया है और इस बात की पुष्टि की है कि भाईचारे के गुलाल से हम मिलजुल कर होली खेलें। स्नेहरूपी पिचकारी सदा जीतती रही है और इस कारण घृणा, द्वेष, चापलूसी, मक्कारी के रूप में आई हर बात टिक नहीं पाई है। सहज एकता की मिठास से हमारी झोली भरी हुई है। उल्लास की मधुर भावना हमारे अंग में समाई हुई हैं। कामना यही है कि आपस की दूरी मिट जाए और जीवन हो सुखमय सुहावना, गीतों कर रसधार बहे और हर मन में सद्भाव जगा दे। होलिका दहन में हम सब बुराइयों का दहन कर लेवें। फिर ना उठ पाए कुरीतियां, ऐसा समां बंध जाए। यह रंग ही हम सब पर बरसाएं और सारे रंगों से बढकर प्रेम का रंग ही हम मिलकर खेलें और इस रंग में रंग कर एक-दूसरे पर दूसरा रंग न चढने दें ऐसा संकल्प हम आज लें ताकि जीवन के सफर में सदा रंग बिरंगी खुशहाली बरसती रहे और वासंती समीर बहती रहे।

ईश्वर को हम बाहरी दुनिया में नहीं ढूंढ सकते। वह तो हमारे हृदय में और हर प्राणी की आत्मा में निवास करता है। हम उसे वहीं पा सकते है। ह्न

उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति ना हो जाये। ह्न

– स्वामी विवेकानंद

हिन्दी कारक और वाक्य प्रयोग

मनीषा राणे, पुणे

कारक यह प्रमुख व्याकरणियों कोटियों में से एक है। भाषा में अनेक वाक्य होते हैं। वाक्य में अनेक शब्द रहते हैं। शब्दों में स्वर-व्यंजन होते हैं। शब्दों में पारस्परिक संबंध होना अत्यावश्यक होता है। ऐसे वाक्य निर्माण में कारक का महत्त्व रहता है।

कारक

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से वाक्य के अन्य शब्दों के साथ उसका संबंध दिखाया जाए, उसे कारक कहते हैं।

कारक और विभक्ति

संज्ञा अथवा सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य की क्रिया अथवा किसी दूसरे शब्द के साथ स्पष्ट होता है, उसे 'कारक' कहते हैं।

कारकों की पहचान के लिए संज्ञा तथा सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाए जाते हैं, उन्हें 'विभक्तियाँ' कहते हैं।

कारक के आठ भेद हैं।

१) **कर्ताकारक :** चिह्न (ने,०) (०=मुख्य कर्ता)

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से क्रिया (कार्य) करनेवाले का बोध होता है, उसे कर्ता कारक कहते है।

उदा. १) विद्यार्थी पढता है।

२) विद्यार्थी ने किताब पढी।

यहाँ विद्यार्थी, विद्यार्थी ने इन संज्ञाओं का संबंध पढ़ता है, पढ़ी इन क्रियाओं से है। पहले वाक्य में विद्यार्थी संज्ञा का रूप नहीं बदला। दूसरे वाक्य में विद्यार्थी संज्ञा का रूप बदला है। वह विद्यार्थी ने ऐसा हुआ है।

यहाँ पढ़ता है और पढ़ी ये क्रियाएँ क्रिया करनेवाले के बारे में कुछ कहती है। क्रिया से जिस वस्तु के बारे में कुछ विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्ताकारक कहते हैं।

पहले वाक्य में कर्ता को प्रत्यय नहीं है। याने वह (०) है। दूसरे वाक्य में (ने) यह प्रत्यय है।

२) **कर्मकारक :** चिह्न (को)

जिस व्यक्ति या वस्तु पर क्रिया (कार्य) का प्रभाव पड़ता है, उसे कर्मकारक कहते हैं।

उदा. १) दशरथ ने राम को वनवास भेजा।

२) मैंने गाय को देखा।

यहा पहले वाक्य में भेजने की क्रिया का राम पर प्रभाव है। दूसरे वाक्य में देखने की क्रिया का गाय पर प्रभाव है।

३) **करणकारक :** चिह्न (से, द्वारा)

संज्ञा का जो रूप क्रिया (कार्य) का साधन या माध्यम हो, उसे करणकारक कहते हैं।

उदा. १) गीता कलम से लिखती है।

२) गांधी जी ने अहिंसा के द्वारा सत्याग्रह किया।

यहा पहले वाक्य में लिखने की क्रिया का साधन कलम है। दूसरे वाक्य में सत्याग्रह करने का माध्यम अहिंसा के द्वारा है

४) **संप्रदानकारक :** चिह्न (को, के लिए)

संप्रदान शब्द का अर्थ है देना। जिसे कुछ दिया जाए या जिसके लिए क्रिया (कार्य) की जाए, उसे संप्रदान कारक कहते हैं।

उदा. १) माँ ने बच्चों के लिए रोटी बनाई।

२) पिता जी गरीबों को वस्त्र देते हैं।

यहा बनाने की क्रिया बच्चों के लिए और देने की क्रिया गरीबों के लिए है।

५) **अपादानकारक :** चिह्न (से)

संज्ञा के जिस रूप से किसी वस्तु के दूर हटने या अलग होने का बोध हो, उसे अपादानकारक कहते हैं।

अपादानकारक में तुलना का भी बोध होता है। उदा. १) मैं अभी गाँव से आया।

२) राज से मोहन ऊँचा है।

पहले वाक्य में आया क्रिया को कहाँ से पूछने से गाँव से यह उत्तर मिलता है। दूसरे वाक्य में ऊँचाई की तुलना की है।

६) **संबंधकारक :** चिह्न (का, की, के, रा, री, रे)

संज्ञा के जिस रूप से किसी व्यक्ति या वस्तु का दूसरे व्यक्ति या वस्तु से संबंध प्रकट हो, उसे संबंध कारक कहते हैं।

उदा. १) गणेश का भाई आया।

२) वह मोहन की दूकान है।

३) किसान के बैल भाग गए।

४) यह मेरी कलम है।

यहा गणेश का भाई से संबंध, मोहन का दूकान से संबंध, किसान का बैल से संबंध, मेरा कलम से संबंध प्रकट हो रहा है।

७) **अधिकरणकारक :** चिह्न (में, पर) (जगह/स्थान)

संज्ञा के जिस रूप से क्रिया (कार्य) के आधार का बोध होता है, उसे अधिकरणकारक कहते हैं।

उदा. १) घर में अनेक लोग हैं।

२) बंदर पेड पर चढ़ते हैं।

यहाँ हैं और चढ़ते हैं क्रिया का आधार घर में और पेड़ पर है।

८) **संबोधनकारक :** चिह्न (अरे, अजी,अहो, वाह, हे ईश्वर आदि)

उदा. १) अरे! राम कहाँ जा रहा है।

२) हे ईश्वर! मुझे शक्ति दो।

३) वाह! तुमने तो कमाल कर दिया।

ये विस्मयादिबोधक अव्यय होते हैं। इनका प्रयोग संज्ञा के पूर्व किया जाता है।

संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारा जाए अथवा चेतावनी दी जाए, उसे संबोधनकारक कहते हैं।

स्वातंत्र्यवीर सावरकर - पुण्यस्मरण (२६ फरवरी)

भारत के स्वातंत्र्य संग्राम में अनेक महापुरूषों ने भाग लिया। इन सबको भारत की स्वतंत्रता का श्रेय प्राप्त है। किंतु स्वातंत्र्यवीर सावरकर उनमें तेजस्वी नक्षत्र-से चमकते हैं। अपने वीरश्री युक्त कार्यों से और

स्फूर्तिप्रद वचनों से उन्होंने भारतीयों के प्राणों को स्पंदित किया। उन्हें स्वदेश, स्वभाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए प्रेरित किया। सावरकरजी के जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, मातृभूमि की स्वतंत्रता, जिसके लिए उन्होंने सांसारिक सुखों से स्वयं को सहजता से अलग कर लिया। भारत की स्वतंत्रता के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करने का सशक्त प्रयास किया। इस प्रखर देशभक्त का उत्तुंग व्यक्तित्व भारतीयों के लिए सदैव प्रेरणाप्रद रहेगा।

महान लक्ष्य के लिए किया गया कोई भी बलिदान व्यर्थ नहीं जाता है।

– वीर सावरकर

नवजागरणकालीन हिन्दी

डॉ. महेश दवंगे, पुणे

मुझे देश की आज़ादी और भाषायी आज़ादी में किसी एक को चुनना पड़े तो मैं नि:संकोच भाषा की आज़ादी चुनूँगा. क्योंकि मैं फ़ायदे में रहूँगा. देश की आज़ादी के बावजूद भाषा की गुलामी रह सकती है, लेकिन अगर भाषा आज़ाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता.

–गणेश शंकर विद्यार्थी

भाषा महज़ संवाद या संप्रेषण का माध्यम नहीं है. भाषा हमारी संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, ज्ञान परंपरा को प्रवाहित करनेवाला सशक्त माध्यम भी है. यही वजह है संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं वर्त्तमान समय की तमाम भारतीय भाषाओं ने अपने मूल रूप परिवर्तन के बावजूद अपने भीतर के इतिहास को हमेशा जीवित रखा है। आज भी इस भाषा में निहित साहित्य से भारत की ज्ञान परंपरा आनेवाली पीढ़ी तक प्रवाहित हो रही है। भाषा पीढ़ी–दर–पीढ़ी बदलती रहती है. सामाजिक, सांस्कृतिक बदलाव एवं राजनीतिक स्थितियाँ भी भाषा बदलाव में अहम् भूमिका निभाते हैं। भारत में इंडो आर्यन, द्रविड़, आस्ट्रो–एशियाटिक, चीनी–तिब्बती आदि भाषा परिवार हैं। हजारों वर्षों से आपसी संवाद और टकराहट के बीच ये भाषाएँ समाज के बीच फ़लती–फूलती रही हैं। राजनैतिक उथल–पुथल के बीच भी हमारी भाषाएँ न केवल जीवित रहीं बल्कि सामाजिक एकता एवं सांस्कृतिक मूल्यों को अपने भीतर समाती रही। सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद मुहब्बद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक आदि विदेशियों ने भारत पर कई आक्रमण किये. लगभग सन १२०६ से सन १५२६ तक गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश, लोदी वंश की दिल्ली के तख़्त पर सत्ता रही। सन १५२६ में पानिपत के प्रथम युद्ध में बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित कर मुग़ल साम्राज्य की नींव रखी. यह भारतीय पराधीनता का दौर था. आगे अंग्रेजों ने कूटनीति से भारत की बागडोर अपने हाथ में ली और संपूर्ण भारत में अपना आधिपत्य प्रस्थापित किया. यह वही समय था जब भारतीय आधुनिक भाषाएँ और आधुनिक साहित्य विकसित हो रहा थीं। हमारी भाषाएँ अरबी, फ़ारसी एवं अंग्रेजी भाषा के संपर्क में आ रही थी. जिससे हमारी भाषाओं के भीतर इन शब्दों का प्रचलन बढ़ रहा था. पर आदिकालीन, भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन तमाम कवियों ने भारतीय भाषाओं में साहित्य सृजन कर भारतीय भाषाओं की सौंदर्य चेतना को विकसित किया. नवजागरण काल में अर्थात् १८५७ की राज्यक्रांति के बाद भारतीय भाषाएँ अधिक विकसित होकर आगे बढ़ीं

डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण की शुरूआत १८५७ की राज्यक्रांति के बाद से ही मानी है. १८५७ की राज्यक्रांति भारतीय जनमानस को जगाने की दृष्टि से सबसे अहम् रही है. १९४७ में भारत आज़ाद हुआ, पर उसके बीज इसी आज़ादी ने बोये थे. हिंदी भाषा की दृष्टि से सबसे अहम् भूमिका भारतेंदु जी की ही रही. उन्होंने तमाम विधाओं में कलम चलाकर हिंदी भाषा को सशक्त बनाया. हिंदी को एक स्थिर रूप दिया. भारतीय जनमानस अंग्रेजी हुकूमत के ख़िलाफ़ अपने आक्रोश को व्यक्त कर रहा था, तब भारत की आवाज़ बनकर हिंदी ही उभर रही थी। इस समय भारत की सभी भाषाओं में संवाद बढ़ा। आज़ादी का लक्ष्य लेकर सभी भाषाएँ एकजुट होकर लड़ने लगीं। कई महान प्रतिभाओं का जन्म भी इस दौर में हुआ, जिन्होंने भाषायी एकता की मिसाल को कायम किया। भाषा को लेकर कोई विवाद की स्थिति उस समय नहीं थी. अंग्रेजी हुकूमत की, सत्ता की भाषा थी और हिंदी समेत तमाम भारतीय भाषाएँ प्रतिरोध की भाषाएँ थीं। अतः भिन्न–भिन्न परिवार की भाषाएँ आपस में सांस्कृतिक मेलजोल करते हुए

आगे बढ़ रही थीं। इस दौरान कुछ भाषिक द्वंद्व थे, जो हिंदी के फैलाव से बढ़ रहे थे, जैसे, हिंदी–तमिल, हिंदी–मलयालम, हिंदी–बांग्ला, हिंदी–मराठी, हिंदी–कन्नड़, हिंदी–उर्दू आदि। किंतु इसमें आपसी संवाद से मिलाप हो रहा था। अंग्रेजी, फ्रेंच, तुर्की भाषा साहित्य के अनुवाद से भी भारतीय भाषाओं के भीतर चेतना और नए शिल्प का विकास हो रहा था. दरअसल 'साहित्य की सामाजिक सोद्देश्यता की चेतना नवजागरण की ही देन है'। पर नवजागरण की यह स्थिति अकस्मात निर्माण नहीं हुई थी। जैसे, नवजागरण की सारी प्रेरणाएँ न तो यूरोपीय थी और न ही भारतीय परिस्थितियाँ उसकी एकमात्र आधार थीं। १८५७ से पूर्व सुधार आंदोलनों, शिक्षा अभियानों, किसान विद्रोहों, उनके संगठनों, अपनी अस्मिता पहचान के प्रति सुगबुगाहट, तथा विभिन्न वर्गों में पैदा हुई अपने सामर्थ्य के मूल्यांकन की ललक भारतीय समाज खंड खंड बहुत सीमित ही सही परंतु जागृति का एक लक्षण तो प्रकट कर रही थी। यह सारी प्रेरणाएँ नवजागरण के मूल में थीं और भाषा उसका प्रमुख औज़ार था. भाषा से ही इस नवजागरण की प्रेरणा हर भारतीय के दिलों–दीमाग तक पहुँची थी।

भारत में जाति, धर्म, वर्ग एवं भाषा के आधार पर विभिन्नता है. अंग्रेजों ने इसी विभेद को बढ़ाकर अपनी हुकूमत को विस्तार दिया. उन्होंने शासन को अधिक मज़बूत करने के लिए भाषा विभेद की नीति अपनायी। धर्म और भाषा के नामपर लोगों को विभाजित किया। पर नवजागरणकालीन समय में यह नीति नहीं चली। बल्कि तमाम भाषाओं एवं उसमें लिखनेवाले रचनाकारों, समाजसुधारकों ने सांस्कृतिक एकता की मिसाल कायम की. हमारे यहाँ हमेशा ही दूसरे धर्मों एवं समुदायों को जानने की परंपरा रही है। मुहम्मद गजनवी एवं मुहम्मद गोरी से पहले भारत का इस्लाम से परिचय था। हमारा अरब–फ़ारस देशों से अच्छा व्यापार भी था। भारत ने ख़ुद आगे बढ़कर किसी देश या धर्म पर आघात नहीं किया। नवजागरणकालीन समय की भाषाओं के भीतर भी यही भाव था। आज हिंदी–उर्दू को लेकर विवाद होता है, पर हम यह भूल रहे हैं कि आज़ादी की लड़ाई हमने साथ में मिलकर लड़ी है। उस समय 'दिल्ली उर्दू' अख़बार निकालनेवाले 'मौलवी मोहम्मद वाकर' साहब को दिल्ली गेट के मैदान पर खड़ा कर अंग्रेजों द्वारा गोलियों से भून दिया गया था। मुनीर शिकोहाबादी, फ़जले हक़ खैराबादी, शायर शेफ्ता, सदरुद्दीन आजुर्दा आदि शायरों को भी सजा दी गई थी. कई उर्दू अख़बारों की भाषा अंग्रेजों के ख़िलाफ़ काफ़ी तीख़ी रही। पर बाद में हिंदी को संस्कृत से और उर्दू को अरबी–फ़ारसी से जोड़कर हमने अपनी ही भाषाओं का बंटवारा किया। यह सही है कि हिंदी ने उस समय संपूर्ण भारत को जोड़ने का काम किया। अंग्रेजों के लिए भी हिंदी को अपनाना मज़बूरी थी। जैसे, अंगेजों केलिए यह मज़बूरी थी कि छावनियों में अलग–अलग सूबों, जनपदों, मजहबों और जातियों से भर्ती किये गए सिपाहियों के लिए पिछले चार सौ सालों से चली आती हुई लश्करों की भाषा को ही, जिसमें गद्य–पद्य की मिली जुली परंपरा थी, संचार का माध्यम बनाएँ। इसीलिए बागी फौज़ियों ने जितने भी ऐलान जारी किये सब के सब इसी साझी कौमी में थे। लिपियों की मज़बूरी की वजह से देवनागरी और फ़ारसी लिपि में एक साथ ही ये सब इश्तिहार जारी होते थे। इसी परंपरा को बहादुरशाह जफ़र, जनरल बख्त खां, नाना जी बाजीराव पेशवा, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई, बेगम हज़रत महल ने अपनाया. इसमें न तो अरबी–फ़ारसी की भरमार के कारण और न संस्कृत की तत्सम शब्दावली के कारण कोई दुरूहता थी। हिंदी को संपर्क या समन्वय की भाषा के रूप में स्वीकृति थी। अपनी बात को भारतीयों तक पहुँचाने के लिए हिंदी सशक्त विकल्प थी. धीरे–धीरे जन भाषाओं ने भी अभिव्यक्ति का माध्यम ग्रहण किया. मज़दूर, खेतिहर, श्रमिक वर्ग की भाषा को भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई. ब्रज, अवधी, मैथिली, पंजाबी, बांग्ला, मराठी आदि भाषाओं में बेहतर साहित्य सृजन होने लगा। इन भाषाओं में क्रांति एवं विद्रोह के स्वर सुनाई देने लगे। सभी भाषाएँ एक ही लक्ष्य की ओर अग्रेसर होने लगी।

दरअसल नवजागरण के इस दौर में राष्ट्रजन की अवधारणा व्यापक हुई. क्षेत्रीयता एवं संकुचित राष्ट्रीयता ख़त्म हुई। सभी लोग प्रादेशिक अस्मिता को त्यागकर देश की आज़ादी के लिए एकजुट हुए। भाषा विवाद कभी हुआ नहीं। बल्कि वर्त्तमान समय में भाषिक अस्मिता के बहाने देश की सीमाओं को

बाँटा जा रहा है। दक्षिण भारत और उत्तर भारत की भाषाओं के बीच तनाव की स्थिति है। किंतु नवजागरण के समय में दक्षिण भारत के लोगों ने भी हिंदी के महत्व एवं उसकी व्यापक पहुँच को स्वीकार किया था। अतः यदि आज भाषा विवाद की स्थिति है, तो उसमें हिंदी भाषी लोगों की भी भूमिका रही है। जैसे, स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों में दक्षिण भारत ने भी हिंदी को अपनाया था। बाद में भाषायी अस्मिता के चलते उन्होंने इससे किनारा किया। किंतु उत्तर भारतीय हिंदी भाषियों ने दक्षिण भारतीय भाषाओं से अपना अपरिचय कायम रखा। स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों में हिंदी जिस तरह से प्रबोधन (ज्ञानाधार के विस्तार), आधुनिकीकरण (जनतांत्रिक चेतना के प्रसार) और बंधुत्व (अन्य भाषाओं से लेनदेन) से उन्नयन और समृद्धि हासिल कर रही थी वह प्रक्रिया भी निरंतर अवरुद्ध होती गयी है. दरअसल नवजागरण के दौर में सभी भाषाएँ प्रादेशिक सीमाओं को लांघकर भारतीय अस्मिता को अभिव्यक्त कर रही थी। महज़ अंग्रेजों को हटाना नहीं, बल्कि सुजलाम-सुफलाम् भारत के निर्माण में भाषा की सर्वाधिक अहम् भूमिका थी। अतः हिंदी-तेलगू-मलयालम-कन्नड़ आदि भाषाओं में विवाद नहीं, संवाद की स्थिति थी।

सन १८५७ के संघर्ष ने भारतीय जनमानस में नयी चेतना और उर्जा भरने का कार्य किया। इस संघर्ष ने भारतीय लोगों को पहली बार यह एहसास दिलाया कि हमारी एकता अंग्रेजी हुकूमत को नेस्तनाबूत कर सकती है। अतः यह महज़ सिपाही या सामंतों का विद्रोह नहीं है, और न ही यह असफ़ल विद्रोह है। इसने तो पराधीन भारतीय जनमानस को जगाने का काम किया है। इस दौर का स्पर्श पाकर हमारी कई भाषाएँ, बोलियाँ जीवित हो उठी हैं। नयी नयी शैली एवं वैचारिक धरातल से मुठभेड़ करते हुए हमारी भाषाओं ने एक स्थायी रूप हासिल किया है। वाद-विवाद से परे जाकर विराट भारतीय जन समुदाय को भिन्न संस्कृति, सभ्यता, आचार-व्यवहार, परिधान, खान-पान के बावजूद भारतीयता रूपी धागे में पिरोने का काम भाषाओं ने ही किया है। यह युग अपने भाषा चिंतन केलिए सर्वाधिक मुखर और सचेत रहा। भाषा चिंतकों ने सामाजिक विकास के साथ ही भाषिक विकास पर भी ध्यान दिया। हिंदी में भारतेंदु जी तो इसके पुरोधा थे। उनकी भाषिक विशेषता को लेकर आ. रामचंद्र शुक्ल कहते हैं, भारतेंदु की भाषा में न तो लल्लू लाल का ब्रजभाषापन आ पाया न मुंशी सदासुख का पंडिताऊपन और न राजा लक्ष्मणसिंह का खालिसपन और आगरापन। इतने 'पनों' से एक साथ पीछा छुड़ाना भाषा के संबंध में बहुत ही परिष्कृत रूचि का परिचय देता है। यह वह समय था जब हिंदी गद्य की भाषा आकार ले रही थी। भारतेंदु जी के संमुख हिंदी के कुछ रूप प्रचलित थे। पर वे असल में भाषा चिंतक और आधुनिक युग के निर्माता थे। अतः नवजागरण के समय में भविष्यकालीन समस्याओं को समझते हुए हिंदी को नया रूप प्रदान कर रहे थे.

दरअसल नवजागरण का समय भारतीय भाषाओं के पुनर्जागरण का समय था. इस दौर में सभी भाषाएँ एकजुट होकर प्रतिरोध की संस्कृति को जनम दे रही थीं। सभी भाषाएँ जनचेतना और विद्रोही स्वर को अपनाते हुए सभी जाति, धर्म, वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व कर रही थी और हिंदी भाषाओं के भीतर सेतु बनकर नेतृत्व कर रही थीं। इनके बीच संवाद था. आज़ादी रूपी लक्ष्य निर्धारित था। पर उसके बाद भारतीय भाषाओं की एकता धूमिल होने लगी। भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नता एवं राजनीतिक स्वार्थ ने भाषाओं को भी बाँट दिया। जाति, धर्म एवं वर्ग विभेद की स्थिति भी वैसी ही है। नवजागरण ने जो मूल्य दिए थे, एकता के जो सूत्र दिये थे, आज कहीं खो गये हैं। औपनिवेशिक समय में भारत की कई महत्वपूर्ण भाषाओं एवं बोलियों का दम घुट रहा है। उसके भीतर का हमारा ज्ञान, हमारी परंपरा, संस्कृति, दर्शन मिटने के कगार पर है। जब भाषा ही नहीं रहेगी, तो मनुष्य और मनुष्यता भी नहीं रहेगी. नवजागरण के समय को हमें बार-बार इसीलिए भी याद करना है क्योंकि उसी ने यह एहसास दिलाया है कि हमारी आज़ादी और दुनिया को जोड़ने का एक मात्र माध्यम भाषा ही है। भाषाएँ बटेंगी, तो हमारी गुलामी निश्चित है। पर भाषाएँ आज़ाद, एकसंध रहेगी, तो हमारी अस्मिता और अस्तित्व की पहचान भी बनी रहेगी।

भारत में हिन्दी भाषा का चिंताजनक स्तर

कार्तिक नाईक, भोपाल

भारत में हिंदी सिर्फ एक भाषा नहीं, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक भी है। यह देश के एक बड़े हिस्से में बोली और समझी जाती है, और संविधान में इसे राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। हालांकि, आधुनिकता की दौड़ और पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण हिंदी के उपयोग और स्तर में गिरावट आ रही है,किंतु आज यह चिंता का विषय है कि हिंदी भाषा का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। चाहे बोलचाल हो, लेखन हो या शिक्षण का क्षेत्रह्नहर जगह हिंदी पर अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।जो एक गंभीर चिंता का विषय है.

आज की पीढ़ी में हिंदी का प्रयोग अधिकतर हिंग्लिश(हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रण) के रूप में दिखाई देता है। शुद्ध हिंदी शब्दों के स्थान पर अंग्रेज़ी के शब्द प्रयोग करना एक तरह से फैशन माना जाने लगा है। परिणामस्वरूप भाषा की शुद्धता और उसकी मिठास धीरे–धीरे कम होती जा रही है। विद्यालयों में अंग्रेज़ी माध्यम को प्राथमिकता मिल रही है और हिंदी केवल एक विषय बनकर रह गई है। यहाँ तक कि सरकारी और प्रशासनिक कामकाज में भी हिंदी का प्रयोग सीमित स्तर पर ही देखने को मिलता है।पिछले कुछ दशकों में, खासकर शहरी क्षेत्रों में, अंग्रेजी का प्रभुत्व बहुत तेजी से बढ़ा है। शिक्षा, व्यापार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में अंग्रेजी को सफलता की कुंजी माना जाता है, जिसके चलते लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में भेजना पसंद करते हैं। इसके अलावा, सोशल मीडिया और इंटरनेट पर भी अंग्रेजी का अधिक चलन है, जिससे युवा पीढ़ी हिंदी की बजाय हिंग्लिश का ज्यादा इस्तेमाल करने लगी है।

इस गिरावट के पीछे कई कारण जिम्मेदार हैं:

* **शिक्षा प्रणाली:** शिक्षा प्रणाली में हिंदी भाषा को उतना महत्व नहीं दिया जा रहा है जितना कि अंग्रेजी को दिया जा रहा है। इससे हिंदी भाषा के प्रति लोगों की रुचि कम होती जा रही है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी को प्राथमिकता दी जाती है। कई स्कूल हिंदी को एक विषय के रूप में तो पढ़ाते हैं, लेकिन बातचीत और अन्य गतिविधियों में अंग्रेजी को ही बढ़ावा देते हैं। इससे छात्रों में हिंदी के प्रति रुचि कम होती है और वे इसे सिर्फ एक परीक्षा–केंद्रित विषय मानने लगते हैं।

* **अंग्रेजी का बढ़ता प्रभाव:** अंग्रेजी भाषा का प्रभाव भारत में बढ़ता जा रहा है और लोग इसे अधिक महत्व दे रहे हैं। इससे हिंदी भाषा का उपयोग कम होता जा रहा है।

* **रोजगार के अवसर:** आज के समय में, कई कॉर्पोरेट और बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी पाने के लिए अंग्रेजी पर अच्छी पकड़ होना अनिवार्य माना जाता है। इससे लोगों में यह धारणा बन गई है कि हिंदी में दक्षता करियर में सहायक नहीं है।

* **सामाजिक प्रतिष्ठा:** समाज में, अंग्रेजी बोलने वाले व्यक्ति को अधिक शिक्षित और आधुनिक माना जाता है। यह एक ऐसा सामाजिक दबाव बनाता है जिसके कारण लोग, खासकर युवा, हिंदी में बात करने से हिचकिचाते हैं।

* **वैश्विक प्रभाव:** वैश्वीकरण के इस युग में, विदेशी संस्कृति और भाषाओं का प्रभाव तेजी से

फैल रहा है। विदेशी फिल्में, टीवी शो और संगीत हिंदी की जगह ले रहे हैं, जिससे हमारी अपनी भाषा का महत्व कम हो रहा है।

हिंदी भाषा का स्तर गिरने से हमारी सांस्कृतिक जड़ों पर भी असर पड़ रहा है। साहित्य,लोकगीत, कहावतें और मुहावरे अब उतनी सहजता से नहीं बोले या समझे जाते। आने वाली पीढ़ियों में हिंदी के प्रति आत्मीयता कम हो रही है। इससे भाषा का प्राकृतिक विकास रुकने लगता है और यह केवल औपचारिक प्रयोग तक सीमित हो जाती है।

राष्ट्रीय एकता पर प्रभाव: हिंदी देश को जोड़ने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यदि इसका महत्व कम होता है, तो अलग-अलग भाषाई समूहों के बीच संवाद और समझ में कमी आ सकती है, जिससे राष्ट्रीय एकता कमजोर हो सकती है।

साहित्यिक और रचनात्मक विकास में बाधा: एक मजबूत भाषा ही समृद्ध साहित्य को जन्म देती है। यदि भाषा ही कमजोर होगी, तो नए साहित्य और रचनात्मक लेखन को बढ़ावा नहीं मिलेगा।

हिंदी केवल भाषा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की धड़कन है। इसका गिरता स्तर हमारी पहचान को कमजोर कर सकता है। समय की आवश्यकता है कि हम हिंदी को उसके सम्मान और गौरव के साथ अपनाएँ। हिंदी का प्रचार-प्रसार केवल सरकार की ज़िम्मेदारी नहीं, बल्कि हर भारतीय का कर्तव्य है। यदि हम हिंदी को आत्मसम्मान के साथ अपनाएँ, तो यह भाषा आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उतनी ही सशक्त और जीवंत बनी रहेगी।भारत में हिंदी भाषा का गिरता स्तर एक चिंताजनक स्थिति है। हमें इसके कारणों को समझना होगा और इसके समाधान के लिए प्रयास करने होंगे। हमें हिंदी भाषा को बढ़ावा देना होगा और इसके महत्व और उपयोगिता के बारे में लोगों को जागरूक करना होगा।यदि हम सब मिलकर अपनी भाषा के प्रति सम्मान और जागरूकता बढ़ाएँ, तो हम न केवल हिंदी को बचा सकते हैं, बल्कि उसे नई ऊंचाइयों पर भी ले जा सकते हैं। हिंदी हमारी पहचान है, और इसे मजबूत बनाए रखना हमारी जिम्मेदारीहै।

प्रार्थना : क्या, क्यों और कैसे?

★ प्रार्थना के बारे में कुछ बातें।

हमें समझ लेना है कि प्रार्थना में कैसी शक्ति है। ब्रह्म समाज धर्म में तो दैनिक वंदना,संध्या दिन में दो बार होती है। जीवन में दैनिक नियमितता होनी चाहिए। सूरज रोज उगता है, रोज डूबता है। इसलिए हमें भी रोज नया-नया विचार करना चाहिए।

प्रार्थना के लिए प्रांत भेद, भाषा भेद, धर्म भेद और जाति भेद नहीं करना चाहिए। प्रार्थना सामूहिक और व्यापक होनी चाहिए। प्रार्थना से मन को विश्राम और आध्यात्मिक उत्साह मिलता है। मन का पोषण होता है। मन की शुद्धि होती है।

प्रार्थना व्यक्तिगत तौर पर भी होती है जिससे शुद्ध संकल्प आत्मा की व्याख्या होती है, जिससे स्फूर्ति मिलती है। अत: शुद्ध शक्ति के प्रकाशन के लिए हम इकट्ठे होते हैं और प्रार्थना करते हैं।

★ प्रार्थना और ईश्वर का संबंध

प्रार्थना में हम ईश्वर से ही आशीर्वाद माँगते हैं। कभी-कभी हम कहते हैं कि हमारी स्मरणशक्ति काम नहीं कर रही। क्या करें? यह जो काम करने वाली शक्ति है वही ईश्वर है। इस तरह सृष्टि में कोई है, जो ईश्वर है। इस तरह ब्रह्मांड में भौतिक अनुभव-नैतिक अनुभव से मिली आत्मशक्ति को परमात्मा की शक्ति लेकर बलवान बनाते हैं। इसी के लिए प्रार्थना होती है।

– राकेश अवस्थी

आदर्श कारागार, लखनऊ (उ.प्र.)

हिन्दी शिक्षण योजना (संस्मरण)

राजीव रंजन चतुर्वेदी, मथुरा

एम ए करने के बाद कुछ दिनों मुझे गृहमंत्रालय की हिंदी शिक्षण योजना में कार्य करने का अवसर मिला था।

हिन्दीप्रबोध, हिन्दीप्रवीण, और हिन्दीप्राज्ञ जैसे कोर्स थे, जिनको उत्तीर्ण करने पर केंद्रीय कर्मचारी और अधिकारियों को अतिरिक्त वेतन–वृद्धि मिल जाती थी। इसलिए अहिंदीप्रदेशों के अधिकारियों की कक्षा में रुचि थी। मेरी अवस्था से लगभग दुगुनी उम्र के सरकारी कर्मचारी और अधिकारी मेरी कक्षा में थे। इसलिए उनके सवाल बड़े कठिन होते थे, इसलिए भी कि ऐसे सवाल मैंने अपने अध्यापकों से कभी नहीं पूछे थे। जैसे संयुक्तअक्षर या अक्षर में अक्षर मिलाना । मेरे अध्यापकों ने अक्षर मिलाना सिखाया तो मैंने सीख लिया किंतु उसके नियम क्या हैं, यह न मैंने पूछा न उन्होंने बतलाया परंतु अब अहिंदी प्रदेशों की समस्या थी कि नियम बतलाओ। अंग्रेजी में तो अक्षर मिलाने की समस्या है नहीं। उनके साथ न्याय करने के लिए मैं कभी तो रात भर लगा रहता था, उदाहरण के लिए मैंने एक रात प्रत्येक व्यंजन वर्ण से प्रत्येक व्यंजन वर्ण मिलाया, फिर निष्कर्ष निकाला।

जिन अक्षरों में खड़ी पाई होती है, जैसे ख, ग, घ, च, ज, झ, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, स। उनकी पाई (लकीर) हटा देने से अक्षर का उच्चारण आधा हो जाएगा तथा उसे पूरे अक्षर में जोड़ दिया जाएगा। जैसे ख्यात, ग्घ, घ्या, बच्चा, ज्या, पुण्य, सत्य, तथ्य, पत्ता, वक्ता, ध्यान, अनन्य, प्यारा, ब्या, लभ्य, रम्य, शुल्क, सव्य, अवश्य, रस्य। ख्याल ग्वाल दृश्य रत्नाकर सब्सिडी कल्पना प्रत्यय प्रश्न।

तीन अक्षर ऐसे हैं, जिनमें पूँछ होती है, उनको जोड़ने के लिए उनकी पूँछ आगे वाले पूरे अक्षर से जोड़ दी जाती है। जैसे – क्यारी, फ्यूज, ओफ्फो, मुजफ्फर अक्कड़ बक्कड़ बक्खर। पहले झ अक्षर भी भ में पूँछ लगा कर बनाया जाता था। अब टाइप में नहीं मिला।

बिना पाई वाले अक्षर हैं – ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, र, ह।

हलन्त लगा कर तो हम इनको जोड़ ही देते हैं, जैसे क +, ङ् + क + र =, या क + ङ् + घा = कंघा।

लेकिन देवनागरी में अक्षर से अक्षर को मिलाने की पुरानी रीति है और उसके निश्चित नियम भी हैं, हालाँकि उन नियमों को लेकर हम उतने चैतन्य नहीं हैं। ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, र, ह, इन अक्षरों के नीचे जो अक्षर मिलाया जायेगा, वह पूरा होगा और उसका उच्चारण बाद में आयेगा। जैसे – वाक् + मय = वाङ्मय, = वाङ् मय, कङ्कर, कङ्घा। गड्ढा, अड्डा, बड्डी, पट्ठा।

प्रत्येक वर्ण या अक्षर की रचना में दो भाग होते हैं, एक को हम सुविधा के लिए अपर कह सकते हैं, दूसरे को लोअर।

जो वर्ण अपर में मिलाया जाएगा, उसका उच्चारण आधा होता है और वह पूरे वर्ण के उच्चारण से पहले किया जाता है, उदाहरण के लिए इन्द्र।

द अक्षर में न मिलाया गया है, यह अक्षर के अपर में मिलाया गया है, इसलिए न का उच्चारण द और र से पहले होगा और आधा होगा।

अब चूंकि र अक्षर लोअर में मिलाया गया है, इसलिए र का उच्चारण बाद में होगा और पूरा होगा।

द का उच्चारण भी आधा होगा। जैसे

श्रद्धेय शब्द है, इसमें श का उच्चारण आधा होगा और पहले होगा तथा र का उच्चारण पूरा होगा और बाद में होगा।

ध द के लोअर में मिलाया गया है इसलिए द का उच्चारण आधा होगा और पहले होगा तथा ध का उच्चारण पूरा होगा और बाद में होगा।

यदि श्रध्देय लिखा गया तो ध आधा हो गया, द पूरा हो गया। यह उच्चारण संभव नहीं है। इसलिए श्रध्देय लिखना सही नहीं है, प्रसिध्द सही नहीं है। प्रसिद्ध सही है। ब्रम्ह सही नही है। ब्रह्म सही है।

अब न को जोड़ा तो, अपर में जोड़ा तो अन्य बना, न यहाँ आधा है, जब कि यदि लोअर में जोड़ा तो न पूरा होगा, जैसे रत्न। सन्ध्या, यहां ध और न दोनों अपर में जोड़े गये हैं, इसलिए दोनों ही आधे हैं। तुरन्त में न त के अपर में है। अन्न में एक न आधा है और एक न पूरा है।

र अक्षर जब आधी ध्वनि के साथ अपर में जोड़ा जाता है, तो शीर्ष में जाकर रेफ कहा जाता है, जैसे वर्षा, पूर्ण, या शीर्ष। यदि लोअर में जोड़ा जाता है तो वह पूरा होता है और उसका उच्चारण बाद में आता है, जैसे – विप्र और राष्ट्र में क्रमश: प और ट आधा है, र पूरा है।

आधा विशेषण का प्रयोग स्वर रहित व्यंजन के लिए किया जा रहा है ।

ये वक्त भी नहीं रहेगा...

(फेसबुक से)

पटना में एक आईएएस अफसर रहने के लिये आए जो हाल ही में सेवानिवृत्त हुए थे। ये अफसर हैरान–परेशान से रोज शाम को पास के पार्क में टहलते हुए अन्य लोगों को तिरस्कार भरी नजरों से देखते थे और किसी से भी बात नहीं करते थे। एक दिन एक बुजुर्ग के पास गुफ्तगू के लिए बैठे और फिर लगातार उनके पास बैठने लगे, उनकी वार्ता का विषय एक ही होता था – मैं भोपाल में इतना बड़ा आईएएस अफसर था। यहाँ तो मैं मजबूरी में आ गया हूँ। मुझे तो दिल्ली में बसना चाहिए था। और बुजुर्ग शांतिपूर्वक उनकी बातें सुना करते थे। अफसर की घमंड भरी बातों से परेशान होकर एक दिन बुजुर्ग ने उनसे पूछा कि –

''आपने कभी फ्यूज बल्ब देखे हैं? बल्ब के फ्यूज हो जाने के बाद क्या कोई देखता है कि बल्ब किस कम्पनी का बना हुआ था? कितने वाट का था? उससे कितनी रोशनी होती थी?'' बुजुर्ग ने आगे कहा कि, ''बल्ब के फ्यूज होने के बाद इनमें से कोई भी बात बिलकुल भी मायने नहीं रखती है। लोग बल्ब को कबाड में डाल देते हैं। मैं सही कह रहा हूँ कि नहीं?'' फिर जब उन रिटायर्ड आईएएस अधिकारी महोदय ने सहमति में सिर हिलाया तो बुजुर्ग फिर बोले – ''रिटायरमेंट के बाद हम सबकी स्थिति भी फ्यूज बल्ब जैसी हो जाती है। हम कहाँ काम करते थे, कितने बडे पद पर थे, हमारा क्या रूतबा था यह सब कोई मायने नहीं रखता।'' बुजुर्ग ने बताया कि, ''मैं सोसाइटी में पिछले कई वर्षों से रहता हूँ और आज तक किसी को यह नहीं बताया कि मैं दो बार सांसद रह चुका हूँ।'' उन्होंने कहा कि, ''वो जो सामने वर्मा जी बैठे हैं वे रेलवे के महाप्रबंधक थे और वे जो सामने से आ रहे हैं साहब

(पृष्ठ क्र. ३० पर....)

स्मरण

प्राकृत राम कथा में 'राम'

– डॉ. नीलम जैन, पुणे

विमलसूरि कृत प्राकृत भाषा में निबद्ध रामकथा (पउमचरिय) में राम के जीवन के बाह्य एवं आन्तरिक पक्षों का चित्रण अति कुशलता से हुआ है। इस रामकथा में राम ६३ शलाका पुरूषों में से एक है एवं ८ वें बलभद्र हैं।

श्रीराम अवध नरेश दशरथ एवं महारानी अपराजिता (कौशल्या) के ज्येष्ठ पुत्र है, उनके जन्म से पूर्व ही माता को शुभस्वप्न आते हैं, जिनका शुभफल बताते हुए ज्ञानियों ने कहा था कि बालक कुशाग्र बुद्धि, लोकप्रिय, शस्त्र शास्त्रों के निपुण होगा।

राम बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि थे, जन्मत: पराक्रमी शील व सौन्दर्य को पराकाष्ठा थे, इनकी कमल–सम सुन्दर कान्ति के कारण एक नाम पद्म रखा गया था (पद्म उपमुप्पलदलच्छो (कमल दल की कान्ति के समान)? पद्मचरित्र में राम को विमलसूरि ने राघव, रामदेव, हलधर आदि नामों से सुशोभित किया है।

राम द्वारा धनुष भंग एवं राम विवाह

प्राकृत रामकथा में वज्रावर्त धनुष राजा जनक को विद्याधर नरेश चन्द्रगति देता है, शर्त रखी जाती है कि जो इस धनुष पर प्रत्यंचा चढाने में समर्थ होगा वह सीता का वरण करेगा, स्वयंवर में राम प्रत्यंचा चढाने में सफल हो जाते हैं, सीता का विवाह राम के साथ हो जाता है।

रामेण तओ सीमा, परिणीया संपयाऐ परमाऐ।

राम वन गमन

प्राकृत रामकथा में दशरथ कैकेयी को २ नहीं १ वर देते है, कैकेयी भरत को संसार से उदासीन देखकर व्यथित हो जाती है उसके वैराग्य को रोकने के लिए कैकेयी दशरथ से भरत के लिए राज्य मांगती है, दशरथ उसे स्वीकार कर लेते हैं, राम को जब सारी स्थिति का पता चलता है तब वे चिंतन करते हैं कि मेरी उपस्थिति में विनीत भरत राजा ग्रहण नहीं करेगा अत: राम पिता की आज्ञा से नहीं स्वेच्छा से वनगमन का निर्णय लेते हैं। लक्ष्मण और सीता उसके सहयोगी बनकर वन में साथ जाते हैं।

राम एक आदर्श पुत्र हैं इसीलिए पिता के वर देने के उपरान्त चिन्तित देखकर स्वयं भरत से 'करहे रज्जंसुचिरकालं' कहकर भरत को अपने हाथों से राजपट्ट बाँध अपने हृदय की विशालता एवं उदारता का परिचय भी देते हैं। जब कैकेयी वन में उन्हें लौटाने के लिए जाती है तब उन्हें क्षत्रियों की वचनबद्धता का गौरव बताकर भरत सहित वापिस भेज देते हैं, वे पलभर के लिए भी कैकेयी व भरत से वितृष्णा नहीं करते अपितु कैकेयी को मां एवं भरत को प्रिय भाई कहकर ही सम्मान देते हैं।

परम पराक्रमी

राम परम पराक्रमी हैं जब मलेच्छों से युद्ध होता है तब वह पिता को नहीं जाने देते। पिता द्वारा शत्रु की भयंकरता दिखाने पर दृढता से कहते हैं–

उस पशु से लडने क्या पिता जायेंगे– हे राजन! क्या थोडी सी ही आग वन को नहीं जला देती (घोवो चिचय हुयवहो वणं बहुय) भीषण युद्ध में वे मलेच्छों को पराजित कर देते हैं।

राम का वनवास विभिन्न घटनाओं का संकुल हैं, वे साधुओं के उपसर्ग दूर करते हैं उनके प्रवचन सुनते हैं, उनको आहार देते हैं वे सिंहोदर, रूद्रभूति, कविल अतिवीर्य आदि दुष्टों का मर्दन कर वज्रकर्ण, बालिखिल्य, जटायु, सुग्रीव विराजित आदि सज्जनों की रक्षा करते हैं। जहाँ भी मन्दिर दिखाई देता है वहाँ पूजा भक्ति करते हैं भजन स्तुति गायन करते है।

आदर्श पति

प्राकृत रामकथा के राम मानव हैं इसी कारण मानवोचित दुर्बलता भी उनमें दिखाई पडती है, सीता-हरण होने पर वे शोक सन्तप्त होकर सभी चेतन-अचेतन से सीता के बारे में पूछते है-

भो भो मत्तमहागय। एत्थारण्णे तुमे भमन्तेणं महिला सोम सहावा, जई दिट्ठा किं न साहेहि।।

(है मत्त महागज: इस अरण्य में घूमते हुए तुमने सौम्य स्वभाव वाली महिला यदि देखी हो तो क्यों नहीं कहते।)

सीता वियोगाग्नि से वे कृशकाय हो जाते हैं, इतना ही नहीं सीता सन्देश लेकर आए हुए हनुमान का सहर्ष आलिंगन करते हैं, शोकाकुल होकर कहते है-मैं जनकसुता को वन में हार गया, लोकोपवाद भय से सीता को निर्वासित करते हैं परन्तु महल में अकेले तड़पते रहते हैं, वन में सीता को छोडकर लौटे हुए सेनापति कृतान्तवस्त्र के समक्ष कहे गए उनके करूणा प्लावित वचन किसी भी पाषाण हृदय को पिघला सकते हैं- वे बार बार भवन में अकेले विलाप करते हुए कहते हैं-

निददोसा सि मयच्छी। किवाविमुक्केण उज्झिया सि यए
रण्णे उत्तासणएं न य नज्जई कि पि पाविहिसि।।

(हे मृगाक्षी! तू निर्दोष है! तू मेरे हृदय को जानती है। दयाहीन मैंने तुझे जंगल में छोड़ दिया।)

एक ओर लोक रक्षक राम सीता को अग्नि परीक्षा की आज्ञा देते हैं उधर गगनचुम्बी ज्वाला राशि देख व्याकुल होकर अन्तर्पीडा से व्यथित भी हो गए थे जैसे योगी एकाग्र मन से सिद्धि का ध्यान करता है उसी प्रकार राम सीता का ध्यान करते थे।

धीर वीर राम की अधीरता उनके आदर्श पति प्रेम की पराकाष्ठा है। वे हनुमान के माध्यम से लंका में सीता को भेजते हैं। राम की वियोगजन्य विरह स्थिति का वर्णन विमलसूरि की लेखनी बड़ी कातरता से करती है वे हनुमान से लंका में सीता को कहलाते हैं।

'तुम उस राक्षसद्वीप में मर मत जाना, मैं वानर सेना के साथ तुम्हारे पास आऊंगा।'

सीता की अग्नि परीक्षा के उपरान्त राम को जब अपनी त्रुटि का एहसास होता है तो वे सीता से अपने अपराध के लिए क्षमा याचना भी करते हैं-

एयारिसं अकज्जं, न पुणो कहायि तुज्झ ससिवयणे! सुन्दरि पसन्यहियया, होहि यहं खमसु दुच्चरियं!!

(हे शशिवदने: ऐसा अकार्य मैं तुझ पर कभी नहीं करूँगा! हे सुन्दरि तू प्रसन्न मन हो और मेरा अपराध क्षमा करे।)

सीता अग्नि परीक्षा के उपरान्त साध्वी बन जाती है राम विकल होते हैं...

अनेक गुणों के धामरूप शीलवती सर्वदा अनुकूल ऐसी सीता का मैं मूर्ख दूसरों के परिवाद से खो बैठा परमार्थ को माननेवाले राम ने तब सीता को प्रणाम किया।

आदर्श भ्राता

श्री राम को अपने अनुजों से अनन्य स्नेह है। राज्य त्याग के उपरान्त भी राम भरत का आलिंगन करते हैं समझा कर वन से वापिस करते हैं। रावण के साथ संग्राम में शक्ति प्रहार से लक्ष्मण में मूर्च्छित होने पर राम को दशा सीता वियोग से भी अधिक द्रावक हो जाती है वे विलाप करते हुए कहते हैं मुझे सीता का वियोग उतना पीडित नहीं करता जितना लक्ष्मण की मूर्च्छा, सुग्रीव भामण्डल से राम कहते है-

सुग्गीवय: भामण्डल। चियया मे रयहा मा चिरोवेह जामि अहं परलों तुब्मे वि जहिच्चिदयं कुणह!!

हे सुग्रीव! हे भामण्डल! मेरी चिता बनाओ देरी मत करो, मैं परलोक में चला जाऊँगा।

लक्ष्मण की मृत्यु पर राम की कातर दशा किसी भी सहृदय को पिघला सकती है, लक्ष्मण यदि राम के अनन्य भक्त थे तो लक्ष्मण भी राम को अत्यन्त प्रिय थे।

लक्ष्मण की मृत्यु पर राम विक्षिप्त हो गए, वे लक्ष्मण की मृत देह को भी अपने से दूर नहीं करना चाहते थे।

लंका के वैभव में सुखपूर्वक रहते हुए भी वे भाई भरत के लिए चिन्तित हैं और साकेतपुरी के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

जीवन के अन्त में राम को सांसारिक भोगों से उदासीनता हो जाती है वे शत्रुघ्न को बुलाकर कहते है ''हे वत्स! राजाओं से युक्त इस राज्य का तुम उपयोग करो। संसार भ्रमण से भयभीत मैं तपोवन में प्रवेश करूँगा।

राम मोक्ष गमन!

राम ने ६० वर्षों तक इस धरा पर मुनिरूप में विहार किया, आध्यात्मिक साधना करते हुए वे मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

निष्कर्षत: प्राकृत रामकथा के राम महामानव हैं, उनका सम्पूर्ण जीवन संघर्षो की पावक में तप तप कर कुन्दन बना है। राजपरिवार से लेकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रत्येक के हृदय पर पहले भी राज्य करते थे आज भी करते हैं, राम आज भी जनमानस में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। उनका चरित्र पुरातन होते हुए भी नित नवीन लगता है। इस प्रकार प्राकृत रामकथा में राम का धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चर्तुपुरूषार्थ समन्वित सर्वगुणसम्पन्न, लोक रक्षक प्रेरक व्यक्तित्व प्रतिपल वन्दनीय है।

(पृष्ठ क्र. २७ से आगे ...)

ये वक्त भी नहीं रहेगा...

वे सेना में ब्रिगेडियर थे और बैरवा जी इसरो में चीफ थे। लेकिन हममें से किसी भी व्यक्ति ने ये बात किसी को नहीं बताई क्योंकि हम जानते है कि सारे बल्ब फ्यूज होने के बाद एक जैसे ही हो जाते हैं। चाहे वह जीरो वाट का हो या ५० वाट का या फिर १०० वाट का हो कोई रोशनी नहीं, तो कोई उपयोगिता नहीं।''

उन्होंने आगे कहा कि, ''लोग अपने पद को लेकर इतने वहम में होते हैं कि रिटायरमेंट के बाद भी उनसे अपने अच्छे दिन भुलाये नहीं भूलते।

वे अपने घर के आगे नेम प्लेट लगाते हैं– रिटायर्ड आइएएस/रिटायर्ड आईपीएस/ रिटायर्ड पीसीएस/ रिटायर्ड जज आदि।''

बुजुर्ग ने कहा कि, ''माना आप बडे आफिसर थे, काबिल भी थे, पर अब क्या? अब यह बात मायने नहीं रखती है बल्कि मायने यह रखता है कि पद पर रहते समय आप इंसान कैसे थे? आपने समाज में लोगों को कितनी तवज्जो दी? समाज को क्या दिया? कितने काम आये? या फिर सिर्फ घमंड में ही ऐंठे रहे।''

बुजुर्ग आगे बोले कि, ''अगर पद पर रहते हुए कभी घमंड आये तो बस याद कर लेना कि एक दिन आपको भी फ्यूज होना है।

'सीख' यह उन लोगों के लिये एक आइना है जो पद और सत्ता में रहते हुए कभी अपनी कलम से किसी का हित नहीं करते और रिटायरमेंट होने के बाद ऐसे लोगों को समाज की बडी चिंता होने लगती है। अभी भी वक्त है। चिंतन करिये तथा समाज की मदद कीजिये। अपने पद रूपी बल्ब से समाज व देश को रोशन करिये, तभी रिटायरमेंट के बाद समाज आपको अच्छी नजरों से देखेगा और आपका सम्मान करेगा.''

आओ, आओ फिर, मेरे वसन्त की परी
छवि विभावरी;
सिहरो स्वर से भर भर, अम्बर की सुन्दरी
छबि विभावरी।।

– निराला

शोषण के विरुद्ध निर्भय - अपराजेय 'निराला'

- सुसंस्कृति परिहार, दमोह, मध्यमप्रदेश

महाकवि, महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का व्यक्तित्व एक दमदार आभा से दमकता रहा है। उन्होंने जीवन में जितनी त्रासदियों का सामना किया ऐसी जटिलताएँ और किसी लेखक ने नहीं झेली होंगी। वे त्रासदियों का गरल पीकर ही विद्रोही कवि बने हैं। वे निडर रहे संभवत: इसलिए पहलवानों की तरह अपनी काया को भी बनाया था और फिर बेख़ौफ़ लिखकर प्रतिकार करते हैं। उनकी एक लंबी कविता है 'कुकुरमुत्ता' इस कविता में कुकुरमुत्ता श्रमिक, सर्वहारा, शोषित वर्ग का प्रतीक है और गुलाब सामंती, पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है। एक नवाब साहब थे। उन्होंने अपने बगीचे में लगवाने के लिए फारस से गुलाब मंगवाए और उस गुलाब को अन्य फूलों के साथ लगवा दिए। बगीचे की देखभाल करने के लिए कई माली और नौकर नियुक्त किये गये, सारा बाग़ बहुत ही सुंदर ढंग से तैयार किया गया। बाग़ में अनेकों प्रकार के सुंदर फूलों के पौधे लगाए गए। जब फूलों के फूलने का मौसम आया तब फारस से लाया हुआ गुलाब का पौधा ख़ुशबूदार फूलों से खिल उठा जिससे समूचे बाग़ के अन्य फूलों की शोभा मंद पड़ गई। उसी के पास स्थित पहाड़ी की गंदगी में एक कुकुरमुत्ता अपना सिर उठाकर खड़ा था और गुलाब को धता बताते हुए उससे कहने लगा-

''अबे, सुन बे, गुलाब, भूल मत जो पायी खुशबु, रंग-ओ-आब,

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर इतरा रहा है केपीटलिस्ट!''

कुकुरमुत्ता गुलाब को ताना मारते हुए कहता है। तूने पूंजीपतियों के समान दूसरों का खून चूसा है तब तुझे यह खुशबू रंग और आभा प्राप्त हुई है। न जाने कितने नौकरों एवं मालियों ने तेरी देखभाल की होगी। इतना होने के बावजूद भी तेरे में काँटे हैं। तेरे पास जो भी आता है उसे तुझसे कष्ट ही मिलता है। तेरा व्यवहार तो उन पूंजीपतियों की तरह है जिनसे कभी किसी को सुख नहीं मिल सकता है। तू बड़े-बड़े लोगों, राजाओं और अमीरों का प्यारा है। तू कभी साधारण वर्ग के साथ घुल-मिल नहीं सकता है। यहाँ कविता में कवि ने गुलाब के बहाने पूंजीपतियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। अपनी बात को बड़े ही प्रतीकात्मक अंदाज़ में कहकर निराला ने सामंतों और पूंजीपतियों को जमकर फ़टकार लगाई है।

एक दूसरी कविता 'वह तोड़ती पत्थर।' में वह लिखते हैं -

वह तोड़ती पत्थर।
मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर।
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार।
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन।
गुरु हथौड़ा हाथ।
करती बार-बार प्रहार।
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप।
गर्मियों के दिन।
दिवा का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू

रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गई प्रायः हुई दुपहर ।
वह तोड़ती पत्थर .....

श्रम साधना में लीन एक स्त्री के श्रम सौंदर्य का जितना सशक्त जीवंत चित्रण मिलता है वह तत्कालीन समकालीन कविता की धरोहर है। कवि इलाहाबाद के किसी रास्ते पर उस महिला को पत्थर तोड़ते हुए देखते हैं। वह एक ऐसे पेड़ के नीचे बैठी है, जहा छाया नहीं मिल रही आस पास भी कोई छायादार जगह नहीं है। इस प्रकार कवि शोषित समाज की विषमता का वर्णन करते हुए बताते हैं कि मजदूर वर्ग अपना काम पूरी लगन के साथ करते हैं। कवि महिला के रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि महिला का रंग सावला है, वह युवा है, आंखो में चमक है और मन अपने कार्य में लगा रखा है। वह पत्थर तोड़ रही है। सूरज अपने चरम पर जा पहुंचा है, गर्मी बढ़ती जा रही है। कवि बताते हैं, दिन में सबसे कष्टदायक समय यही है। धरती-आसमान सब इस भीषण गर्मी से झुलस रहे हैं। कवि बताना चाहते हैं, कि महिला अपनी गरीबी के कारण दुखी है परन्तु उसने अभी तक अपनी हिम्मत नहीं हारी है। अचानक महिला को अपने कार्य का स्मरण होता है और एकाएक फिर से अपने कार्य में लग जाती है। श्रम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए यहाँ निराला उस समाज पर चोट करते हैं जिन्हें इस सौन्दर्य और श्रम की अनुभूति नहीं होती ना ही संवेदनाएँ जागती हैं। इतनी सूक्ष्म और बारीक दृष्टि सिर्फ निराला ने पाई।

इसके अलावा उनकी एक और कविता की याद आ जाती है वह है 'जब राजे ने अपनी रखवाली की' यह रचना तो आज बहुत ही प्रासंगिक हो जाती है। जब सामंती सोच के दायरे पंख पसार रहे हों और जनता गूंगी बहरी बनी सब स्वीकार करते हुए मस्त हो। कविता देखें-

'राजे ने रखवाली की।
क़िला बनाकर रहा।
बड़ी-बड़ी फ़ौजें रखीं।
चापलूस कितने सामंत आए।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आए।
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाए।
लेखकों ने लेख लिखे।
ऐतिहासिकों ने इतिहासों के पन्ने भरे।
नाट्य कलाकारों ने कितने नाटक रचे।
रंगमंच पर खेले।
जनता पर जादू चला राजे के समाज का।
लोक-नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं।
धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ।
लोहा बजा धर्म पर।
सभ्यता के नाम पर।
ख़ून की नदी बही।
आँख-कान मूँदकर जनता ने डुबकियाँ लीं।
आँख खुली-राजे ने अपनी रखवाली की।'

कविता में महाकवि निराला ने राजतन्त्र पर जबरदस्त व्यंग्य किया है। कवि कहता है कि राजा देश की रक्षा के नाम पर विभिन्न उपाय करता है पर वह व्यवस्था वस्तुतः स्वयं उसकी अपनी रक्षा के लिए होती है। इन सबका यह परिणाम हुआ कि राजा और उसके समर्थक वर्ग का जादू जनता पर चल गया है। वह उन्हें महान् समझने लगी है। राजा की रानियाँ भी समाज की नारियों के लिए आदर्श नारी मानी जाने लगीं। राज्याश्रय में पलने वाले धार्मिकों ने जनता को धोखा देने वाले धर्म को बढ़ावा दिया है। अपने धर्म एवं सभ्यता को श्रेष्ठ बताकर उनका प्रचार किया तथा इस प्रक्रिया में संघर्ष हुआ, शस्त्र चले, खून की नदियाँ बहीं। राजाओं के आदेश पर जनता ने अपना खून बहाया और उनकी इच्छा को ईश्वर की इच्छा मानकर वह कटती-मरती रही किन्तु जब जनता की आँख खुलीं तो उसकी समझ में आया कि राजा ने अपनी रखवाली की, उनकी रक्षा नहीं की वरन् स्वयं की रक्षा ही की है। आज लगभग कुछेक स्थितियों को छोड़कर हाल वही है।

निराला सच लिख देते हैं, जब आंख खुलेगी बहुत देर हो जाएगी।

लगता है, इसीलिए अंत में निराला 'वीणा वादिनी वर दे' लिखने प्रेरित होकर ऐसी सरस्वती वंदना लिखते हैं जो वीणा बजाती हुई जीती जागती देवी की है। वे उनसे जो वरदान मांगते हैं उनमें नवीनता का संदेश देते हुए अंधियारा हटाने की बात करते हैं जो आज भी स्टीक और प्रासंगिकता लिए हुए हैं। वे लिखते हैं

'वीणा वादिनी वर दे!।
वीणा वादिनी वर दे।
प्रिय स्वतंत्र रव –अमृत मंत्र–नव।
भारत में भर दे।
काट अंध उर के बंधनस्तर।
बहा जननी ज्योतर्मय निर्झर।
कलुष भेद तम हर प्रकाशभर।
जग मग जग कर दे!।
नव गति, नव लय, ताल–छंद नव।
नवल कंठ, नव जलद–मन्द्ररव;।
नव नभ के नव विहग–वृंद को।
नव पर, नव स्वर दे ।
वर दे, वीणा वादिनी वर दे।'

इस कविता में वे नई चेतनायुक्त नवीनता का खुलकर आव्हान करते हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जन्म वसंत पंचमी के दिन हुआ। इस दिन, बंगाल बिहार में सरस्वती पूजा का विधान है और नन्हें बच्चों के पठन–पाठन की शुरुआत इसी दिन से प्रारंभ की जाती है। इस अवसर पर तथा आज भी देश के हज़ारों विद्यालयों में यह गीत प्रार्थना के समय गाया जाता है। जो एक क्रांतिकारी गीत है। निराला सम्यक बदलाव के पक्षधर हैं। आज उनकी बात सुनना और अपनी आंख खोलना बहुत ज़रूरी है। तभी देश में बढ़ते नये तरीके के शोषण और ख़ौफ के दरवाजे बंद किए जा सकते हैं। वे अपराजेय रहे और हमें भी अपराजेय रहने का मूलमंत्र देकर गए है। वे प्रगतिगामी एवं परिवर्तन कारी कवि थे।

हिंदी भारत के माथे की बिंदी

– मुकेशकुमार 'ऋषिवर्मा', फतेहाबाद–आगरा

हिंदी वह भाषा है जो पूरे भारत देश में ज्यादा से ज्यादा समझी जाती है और यही वजह है कि हिंदी जाननेवाला बगैर किसी अत्यधिक परेशानी के भारत दर्शन कर सकता है। हिंदी शुद्ध–सरल, सहज पढ़ने–लिखने, समझने–बोलने वाली भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा है। कहा जाता है कि किसी भी देश की आत्मा उसकी अपनी भाषा ही होती है। किसी से उधार ली गई या जबरन थोपी गई भाषा में न तो हृदय की विराट भावनाओं की अभिव्यक्ति संभव है और न ही सत् साहित्य की रचना।

हिंदी ने अपनी सरलता के बलबूते पर अहिंदी राज्यों में भी अपना सम्मानित स्थान बना लिया है और अब धीरे–धीरे हिंदी देश ही नहीं विदेशों में भी नित उन्नति के शिखर छू रही है। हालांकि हिंदी आज जिस मुकाम पर है, उस पर पहुँचने के लिए हिंदी ने काफी संघर्ष किया है। अब भी मैकाले के पुत्र हिंदी के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। इनकी संख्या पूरी पचास प्रतिशत भी नहीं है और ये अच्छी तरह से इंग्लिश भी नहीं जानते सिर्फ हिंगलिश ही जानते हैं और इसी हिंगलिश के बल पर अपना कचरायुक्त ज्ञान झाड़ते रहते हैं।

(पृष्ठ क्र. ३५ पर....)

हैद्राबाद

– अनूप जालान, मुम्बई

एक औसत भारतीय कितनी भाषाएँ जानता है? एक, दो, या और अधिक? मेरा ये विश्वास है कि हमारे भारत में कुछ ही ऐसे लोग होंगे जो कम से कम दो भाषाएँ नहीं बोलते। एक उनकी मातृभाषा, दूसरी उस प्रान्त की भाषा जहाँ वे रहते हैं, या फिर हिन्दी या अंग्रेजी। भले ही वे दूसरी भाषा ठीक से बोल न पाएँ किन्तु दूसरी भाषा बिलकुल भी नहीं जाननेवाले व्यक्ति मिलने मुश्किल हैं। और बहुत से तो ऐसे भी हैं जो तीन या और अधिक भाषाएँ बोल सकते हैं।

सन् १९८७ में मैं काम के सिलसिले में हैदराबाद गया हुआ था। आंध्र प्रदेश के एक अंदरूनी इलाके में किसी फैक्ट्री में जाना था। मैं हैदराबाद से वहाँ की एस.टी. बस में बैठा। टिकट ली। मुझे जहाँ जाना था उस गाँव का नाम सुन मेरे बगल में बैठे आदमी ने मुझसे बातचीत शुरू कर दी। वह हिन्दी नहीं जानता था इसलिए हमने अंग्रेजी में ही बात की।

उसके पूछने पर मैंने बताया कि मैं किस फैक्ट्री में जाना चाहता हूँ। उसने कहा कि मुझे जहाँ बस उतारेगी वह एक गाँव है और फैक्ट्री वहाँ से कुछ १०–१२ किलोमीटर दूर है। वहाँ सायकल रिक्शा के अलावा कोई यातायात का साधन नहीं है, इसलिए बस अड्डे से मुझे रिक्शा लेकर जाना होगा। वापस आने रिक्शा नहीं मिलेगा इसलिए बस अड्डे से जानेवाले रिक्शा को ही रोक लेना, उससे पहले ही जाने–आने का किराया तय कर लेना।

करीबन २ घंटे की यात्रा के बाद बस वहाँ पहुँची जहाँ मुझे उतरना था। मेरे अलावा वहाँ २–३ लोग और उतरे। उनमें से एक मुझे सलाह देनेवाला आदमी भी था। मैंने इधर–उधर नजर दौडाई। वहाँ केवल एक सायकल रिक्शा खडा था। मैंने उस रिक्शावाले से फैक्ट्री आने जाने का किराया पूछा। लेकिन वह न तो हिन्दी जानता था न अंग्रेजी। वह तेलुगु और तमिल जानता था, और वे दोनों भाषाएँ मुझे नहीं आती थी।

मैंने दौडकर उस आदमी तक गया जिसने मुझे सलाह दी थी। उसे बात समझायी। उसने वापस आकर रिक्शावाले से तेलुगु में बात की। फिर मुझसे कहा, ''मैंने इसे समझा दिया है। यह आपको फैक्ट्री ले जाएगा। आपको चाहे जितनी भी देर लगे ये वहाँ खडा रहेगा, और फिर यहाँ वापस ले आएगा। इसे यहाँ लौटने के बाद २ रूपए दे दीजिएगा। ये वहाँ जाकर आपसे पैसे माँगने की करेगा। आप वहाँ इसे थोडे रूपया भी दे मत देना वरना ये दारू पीने कहीं चला जाएगा और आप लौट नहीं पाओगे।''

मैं समझ गया। उसका धन्यवाद कर मैं रिक्शा में बैठा। रिक्शावाला मुझे उस फैक्ट्री तक ले गया। वहाँ पहुँच कर उसने इशारों से मुझसे पैसे माँगे। मैंने इशारों से उसे मना कर दिया। मैं फैक्ट्री में अंदर चला गया। मेरा काम जल्द ही निपट गया। मैं वापस रिक्शा में बैठ गया और कुछ देर बाद उसी गाँव के उसी बस अड्डे पर वापस पहुँच गया।

मैंने रिक्शावाले को पैसे देने जेब से अपना बटवा निकाला। मेरे सामने दस का एक नोट और पचास–पचास के दो तीन नोट थे। मैंने सोचा कि इसे पचास रूपए दे दूँगा तो छुट्टे पैसे वापस लेने की समस्या हो जाएगी। एक तो वह हिन्दी नहीं बोलता था, ऊपर से वहाँ और कोई आदमी भी नहीं था जिसके जरिए मैं उसे बात समझा सकूँ। इसलिए मैंने बटवे में से इधर उधर ढूँढकर चिल्लर पैसे गिनने शुरू

किए कि कैसे भी करके २८ रूपए जुट जाएँ।

मुझे इस तरह चिल्लर गिनते देखकर अचानक वह रिक्शावाला बोला ''क्यासाब चिल्लराँ गिन रै, पचास का नोट देओ, हम देते ना आपको चिल्लर।''

मैं देखता रह गया। वह तो अच्छी खासी हैदराबादी हिन्दी बोल रहा था।

फिर मुझे समझ आया। ऐसा नहीं है कि ये हिन्दी बोलना नहीं जानता। ये सिर्फ खुद की भाषा के अलावा किसी और भाषा में बोलना नहीं चाहता, इसलिए ना बोल पाने का नाटक कर रहा है। मैंने कहा कुछ नहीं, लेकिन मुझे थोडा गुस्सा जरूर आया।

बस, तभी से मुझे ये विश्वास हो गया कि शायद ही ऐसा कोई भारतीय होगा जो चाहे तो दो या अधिक भाषाएँ नहीं बोल सकता।

मैं हैदराबाद लौट आया।रात होने को थी, सोचा पहले खाना खा लेता हूँ फिर ही होटल में अपने कमरे पर जाऊँ वरना दिन भर की थकान के बाद दोबारा बाहर आने का मन नहीं करेगा।

मेरी होटल के पास ही एक मारवाडी ढाबा था। मैं अक्सर वहाँ खाना खाया करता। उस दिन भी वहीं चला गया। ढाबे के मालिक मुझे अच्छे से जानने लगा था। उसने देखते ही मुझसे कहा ''आओ भाईजी, मैं थानै याद ही कर रह्यो थो, आज थारै पसंद की मिस्सी रोटी बणी है, खाओगा नै।'' मिस्सी रोटी हमारे यहाँ बेसन और आटे को मिला कर बनती है, मुझे बहुत पसंद है। मैं उसके ढाबे में जब भी जाता उसे कहकर बनवाता।

उसके मुँह से हमारी शेखावाटी बोली सुनते ही मेरा जी प्रसन्न हो गया। मानो सारे दिन भर की थकान निकल गई। मन में खयाल आया– इस तरह अपनी खुद की बोली बोलने सुनने का मजा ही कुछ और है। मेरा बस चले तो मैं और कोई भाषा ना बोलूँ।

और ये खयाल आते ही मुझे वह रिक्शा वाला ध्यान आया। वह भी तो खुद की भाषा ही बोल रहा था। फिर मुझे उस पर गुस्सा क्यों?

(पृष्ठ क्र. ३३ से आगे ...)

हिंदी भारत के माथे की बिंदी

आज भारतीय महापुरूषों का तिरस्कार किया जा रहा है, जिन्होंने हिंदी की प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके नाम पर स्कूल–कॉलेजों का नाम रखनेपर उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। मैकाले ने मानस पुत्र बडे शौक से सेंट मार्क्स, सेंट जेवियर, सेंट थॉमस आदि नामों से नित नये–नये स्कूल, कॉलेज खोल रहे हैं। मोटी–मोटी फीस लेकर भी ये बच्चों को शिक्षा के नाम पर सिर्फ मशीन बना रहे हैं। अब संत कबीर, संत तुलसीदास, महर्षि पाणिनी, महर्षि स्वामी दयानन्द, संत कालिदास, सूरदास आदि नाम लोगों को अटपटे लगने लगे हैं। हम भारतीय न होकर सिर्फ इंडियन बनकर रह गये हैं।

तमाम देशी–विदेशी षड्यंत्रों के महाजाल से निकलकर हिंदी ने आज अपनी एक अलग पहचान बना ली है। अलग–अलग भाषाओं के अलग–अलग शब्दों को अपने आप में मिलाकर क्षेत्रवाद का बंधन भी तोड़ दिया है।

अब बस एक ही कमी रह गई है राष्ट्रभाषा हिंदी को राजनैतिक सहयोग और मिल जाये फिर हिंदी बगैर किसी विरोध के भारतवर्ष की रानी बनकर राज करेगी। माननीय प्रधानमंत्री श्री. नरेन्द्र मोदी जी ने अपने शुद्ध–सरल तेज तर्रार हिंदी भाषणों से भी हिंदी को बहुत अधिक पुष्टता प्रदान की है।

''हिंदी भारत के माथे की बिंदी''

- लघुकथा -

– डॉ. अशोक गुजराथी, नवी मुम्बई

जादूगर

जादूगर तरह-तरह के करिश्मे दिखा रहा था. लोग तालियां बजा-बजाकर उसे बार-बार दाद दे रहे थे. यह रात का सेकिंड शो था. बढ़ती हुई उमस के कारण पंखों के चलते हुए भी खुली हवा की ख़ातिर थिएटर के सारे दरवाज़े खोल दिये गये थे.

रंग-बिरंगी पोशाकें पहने ख़ूबसूरत नवयौवनाएं जादूगर के आसपास थिरक रही थीं. उनकी मदद से जादूगर एक-से-एक नायाब खेल दिखा रहा था. लोग सम्मोहित-से अपनी सीटों में जकड़े बैठे हुए थे. तभी एक कुष्ठरोगी भिखारन अपने बच्चे को छाती से चिपकाये पता नहीं कैसे चौकीदार की निगाह बचाकर अहाते में घुस आयी. वह दरवाज़े की ओट में जादूगर को अपलक निहारती खड़ी रह गयी.

जादूगर शून्य से बहुत-कुछ पैदा करने में मसरूफ़ था. उसके हाथ उठाते ही कभी अंडा, कभी कबूतर, कभी सौ का नोट लगातार आते चले जा रहे थे. दो दिनों से भूखी भिखारन जादूगर की शक्ति से इतनी प्रभावित हुई कि अपनी औक़ात भूल संवेदना में बहती हुई बच्चे को सम्भाले जादूगर की दिशा में दौड़ पड़ी. जादूगर अवाक् , लोग भी चकराये. जादू देखने में खोया गेट-कीपर जब तक उसे पकड़े-पकड़े, तब तक वह मंच पर पहुंच चुकी थी.

वह जादूगर के पैरों के पास बच्चे को लिये-लिये जैसे ढह गयी और रोती हुई उसकी अनुनय करने लगी, 'महाराज, दो दिन से कुच नई खाया... मेरेकू एक रोटी... बस एक रोटी बुला दो... इत्ती मेहरबानी...'

उसे हटाने का प्रयत्न करते गेट-कीपर को जादूगर ने इशारे से रोक दिया. फिर झुककर भिखारन को उठाते हुए बोला, 'काश! मैं रोटी पैदा करने का जादू जानता... पर तुम्हें रोटी मिलेगी, ज़रूर मिलेगी!' लोगों ने देखा- जादूगर की आंखों में आंसू थे.

उस रात फिर जादूगर आगे खेल नहीं दिखा सका.

तुम क्या जानो

चुनाव का मौसम था. निधि और अमोघ अपने पापा से 'मतदान कैसे होता है' पूछ रहे थे. पापा ने समझाने की कोशिश की. फिर भी बच्चों को पूरी प्रक्रिया स्पष्ट नहीं हो पा रही थी. तब उनके पापा ने चुनाव का खेल खेलने की योजना बनायी.

दो प्रत्याशी थे. मम्मी और पापा. चार मतदाता थे. निधि, अमोघ, मम्मी और पापा. शर्त थी कि अपना-अपना मत हरेक को सदा के लिए गुप्त रखना होगा.

पापा ने चार मतपत्र बनाये. उन पर मम्मी और पापा के नाम लिखे. बच्चों को तरीक़ा बताया. अमोघ का गुल्लक मतपेटी बना. बैठक बन गयी मतदान-केन्द्र.

मतदान हुआ. चारों लोग मतों की गणना करने बैठे. मत-पत्र खोले गये. मज़े की बात कि कोई नहीं जीता. दोनों को दो-दो मत मिले.

सभी ने चुनाव को लेकर ख़ूब हंसी-मज़ाक करते हुए खाना खाया. बच्चों के सो जाने के पश्चात एकांत मिलते ही पति ने पत्नी से कहा, 'हार-जीत महत्वपूर्ण नहीं है. मुझे ख़ुशी है कि बच्चे हमको बराबर-बराबर चाहते हैं.'

पत्नी ने पति के प्रसन्न चेहरे को पल भर निरखा. फिर अपने होंठ भींचते हुए मन-ही-मन सोचा- 'अच्छा हुआ, मतदान गुप्त रखा गया- नहीं तो इन्हें पता चल जाता कि मैंने अपना मत इन्हीं को दिया था.'

अनुवाद

मूल मराठी कविता : कणा
हिन्दी अनुवाद : रीढ़

मराठी

– कुसुमाग्रज

'ओळखलत का सर मला?'– पावसात आला कोणी,
कपडे होते कर्दमलेले, केसांवरती पाणी.

क्षणभर बसला नंतर हसला बोलला वरती पाहून :
'गंगामाई पाहुणी आली, गेली घरट्यात राहुन'.

माहेरवाशीण पोरीसारखी चार भिंतीत नाचली,
मोकळ्या हाती जाईल कशी, बायको मात्र वाचली.

भिंत खचली, चूल विझली, होते नव्हते नेले,
प्रसाद म्हणून पापण्यांवरती पाणी थोडे ठेवले.

कारभारणीला घेउन संगे सर आता लढतो आहे
पडकी भिंत बांधतो आहे, चिखलगाळ काढतो आहे,

खिशाकडे हात जाताच हसत हसत उठला
'पैसे नकोत सर, जरा एकटेपणा वाटला.

मोडून पडला संसार तरी मोडला नाही कणा
पाठीवरती हात ठेउन, फक्त लढ म्हणा'!

हिंदी

– डॉ. जयश्री भास्कर वाडेकर, जालना

पहचाना मुझे सर? ह्न बरसात में कोई आया,
कपड़े थे कीचड़ में सने, बालों पर पानी छाया।

क्षण भर बैठा, फिर हँसकर ऊपर आसमान निहारा
गंगामाई मेहमान बनी, घोंसले में रहकर गुज़ारा।

मायके आई बेटी जैसी, चार दीवारों बीच नाची,
खाली हाथ से कैसे जाती, पत्नी मगर बची।

दीवार गिरी, चूल्हा बुझा, जो था सबकुछ ले गई,
आशीष स्वरूप पलकों पर, थोड़े आँसू रख गई।

अब घरवाली को साथ लिए, सर, लड़ाई लड़ता हूँ,
गिरी हुई दीवार उठाता, कीचड़ह्नगाद हटाता हूँ।

जेब की ओर बढ़ा हाथकि हँसते हुए वो बोला:
पैसे नहीं सर, बस थोड़ी तन्हाई ने मुझे टोला।

टूट गया है घरह्नसंसार, पर टूटी नहीं है मेरी हिम्मत,
पीठ पर हाथ रखकर कहना, बस ह्न लड़ते रहना!

उद्यमेनैव हि सिध्यन्ति,कार्याणि न मनोरथै। **न हि सुप्तस्य सिंहस्य,प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।** **भावार्थ :** प्रयत्न करने से ही कार्य पूर्ण होते हैं, केवल इच्छा करने से नहीं, सोते हुए शेर के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते हैं।	**विद्वत्वं च नृपत्वं च न एव तुल्ये कदाचन् ।** **स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।** **भावार्थ :** विद्वता और राज्य अतुलनीय हैं, राजा को तो अपने राज्य में ही सम्मान मिलता है पर विद्वान का सर्वत्र सम्मान होता है ।

कविता

कौन सगा?

– शोभा शर्भा, छतरपुर

मन में प्रश्न उठा!
कौन सगा?
क्या वे!
वे जो मेरी शिराओं में ला देते हैं उबाल,
तेजी से धमकने लगता है,
जो बहते हुए सिर से पैर तक ,
धड़कनें बढ़ा देते हैं,
किसी गर्म लावे की तरह अपने शब्दों से,
मर्म को जलाकर खाक करके,
धुआं-धुआं कर देते हैं!
कंठ सुखा देते हैं अपने तेज स्वरों से,
आंखों में खिलते सितारों की जगह,
धूमकेतु बनकर टूटने लगते हैं सितारे,
उनकी दिलों की कड़वाहट पीकर,
झरती शीतल चांदनी की जगह,
झरते हैं किसी तप्त कुंड की,
वाष्प जैसे पिघलते गर्म आंसू!
आत्मविश्वास/ जीने के इरादे,
पीले पत्तों की तरह,
झड़ कर मिट्टी में मिल जाते हैं!
मिलते हैं गिले शिकवे उपालंभ,
जो मेरी समझ से,
नितांत ही कुत्सित/ बेमानी और झूठे हैं।
प्यार की जगह मिलती है भर्त्सना,
प्रशंसा की जगह मुझमें कमियां खोजते,
वे मेरे सगे हो सकते हैं क्या!
डिगा देते हैं जो हर कदम मेरा आत्मविश्वास,
जीने का हौसला और विश्वास,
वे मेरे सगे हो सकते हैं क्या?
जो देते हैं मेरे हृदय को सुकून,
अपनी बातों से, मुलाकातों से!
अपने भाव, अनुभव, व्यवहारों से,
ऐसा कुछ खूबसूरत और बेहतरीन,
मुझमें मौजूद न होते हुए भी,
वे मुझे कराते हैं एहसास,
कि तुम बेहतर कर रही हो,
कह रही हो/कर सकती हो।
अच्छी हो, बुरी तो बिलकुल नहीं!
वे जब बताते हैं कि
दुनिया कितनी अच्छी है,
और मैं हूं उनमें से एक।
इस सुंदर दुनिया में वे हर कदम साथ ही हैं,
और यह वे प्यार से,
अपनी अच्छाई से, सच्चाई से
अपनी अंतरात्मा से दर्शाते हैं मेरे लिए,
बनते हैं मेरी प्रेरणा।
तब मैं हृदय से पूछती हूं बार बार,
कौन सगा?
वे या ये?
मेरा मन इनको ही सगा मानना चाहता है।
जिनके बिना मैं हो जाती हूं बिलकुल अकेली।
जिनकी जरुरत मुझे हर कदम पर है,
क्या मैं सही हूं?
कौन सगा?

हंसिया जुगनू और माँ

चांद का हँसिया दबाए,
पाँव की उँगलियों में।
काट रही माँ रात भर से,
सब्ज़ियाँ आसमाँ के सूप में।।
पैर के बिछुए चमकते,
तारे, चमचमाते हुए।
घिस लिए हैं बालुका से,
गंगा में नहाते हुए।।
दिख रही जो आकाशगंगा,
उसकी श्वेत कालिमा रेख।
हवा से उड़ते हों जैसे
अम्माँ के काले श्वेत केश।।
माथे पर घूँघट हलका सा,
जरीदार किनारी लहरती।
सर्दियों की रात अम्माँ,
हल्का सा रही ठिठुरती।।
शुक्र तारे, हिरनियों की,
अंबर पर बूटियां चमकतीं।
अम्मा की सलेटी साड़ी पर,
कढ़ाई की बूटियाँ दमकतीं।
सप्तर्षि खटिया पै बैठे,
इंतजार में भोजन के।
उजाला कर रहे जुगनू,
अम्माँ की रसोई के।।
चूल्हे पर पूनम के चाँद की,
उजली गोल रोटी सिंक रही।
आसमाँ की डलिया में,
नीला कपड़ा बिछा कर,
माँ उन्हें झट रख रही।।
परी मुनिया देखती यह,
कह रही, टंगा है हंसिया,
झूला डाल दो, जिद कर रही।
टार्च लेकर घूमते जुगनू,
बन कर कमेले।
भोजन परोसने के,
बहुत से होते हैं झमेले।।
दौड़ते हैं फिर रहे,
कोई छूट जाए ना।
खाली पेट कोई ,
आकर लौट जाए ना।।
रोटियाँ सेंकते , रात बीत गई।
बनाते हाथ थके, रात भर से,
अम्माँ नहीं सोई।।
सुबह हुई तो,
चाँद हँसिया धोकर,
माँ ने रख दिया।
रात फिर से कटेंगी सब्ज़ियाँ,
जुगनुओं से कह दिया।।
मुख्य अतिथि सूरज,
आया अपनी आभा बिखेरे।
चहचहाते स्वागत करते,
आसमाँ में पाँखी दौड़े चितेरे।।
सोने का थाल माँ के कहने पर,
आगे बढ़ कर परोस गए।
दौड़ते भागते रहे थे जुगनू,
सुबह हुई तो अलसाए से,
कोने में जाकर सो गए।।

कैसे जानूँ!

फागुन मास कोरा गया,
अश्रु भर गाए गीत विरह के,
महुए फूले नहीं जंगल में,
देह धरा पर हैं नहीं टपके।
जानूं मैं कब और कैसे सखी री?
कि कंत वसंत का आगमन हुआ?

मन बावरा पियु पियु रटता,
पियु ने डाली नहीं गलबहियां,
न जानूं कपोल कब दहके!
सतरंगी न हुईं हथेलियाँ,
फागुन मास न हुईं रसबतियाँ,
जानूं मैं कब और कैसे?
कि कंत वसंत का आगमन हुआ?

अंग लगे नहीं हल्दी के उबटन,
पचरंग सारी न देह पै धारी,
आहट हुई न पियु आगमन की,
पलक हुई नहीं नैनन की भारी।
हाथ में चूड़ी औ पैर में घुंघरू,
बजे नहीं जब तक,
जानूं मैं कब और कैसे?
कि कंत वसंत का न आगमन हुआ?

कुछ दोहे

– चन्द्रकान्त दीक्षित, इंदौर

पत्थर नीचे हाथ है, फिर कैसा ये द्वंद।
जो मिलता है मान ले, है सच्चा आनंद।।१।।

वृद्ध जनों की सोच पर, युवा न देते ध्यान।
संस्कारों विपरित चलें, होता फिर नुकसान।।२।।

तन देवालय पहुँचता, मन रहता ना पास।
इधर-उधर वह दौडता, ना हो पूरी आंस।।३।।

दूरदर्शिता ना रहे, तभी बिगडते काम।
पछतावा करना पडे, मन को रखना थाम।।४।।

समझो परोपकार तब, जब मन निश्चल होय।
वरना फल मिलता नहीं, मन में भी दु:ख होय।।५।।

कुछ समझते हैं खुद को, दूजे से हूँ बीस।
जानकार से भेंट हो, उठती मन में टीस।।६।।

सुलझे ज्ञानी को भी, ना छू पाये गर्व।
सबसे मिलजुल कर रहे, सदा मनाये पर्व।।७।।

निम्न से निम्न कोटि के प्राणी के अंदर भी वही पवित्र आत्मा निवास करती है, जो अविनाशी है, जिसका न कभी जन्म हुआ है, न उसकी कभी मृत्यु होगी, जो अनंत है ह्न वही सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी आत्मा सब के अंदर विराजमान है। ह्न

– स्वामी विवेकानंद

गीत

– आदर्शिनी श्रीवास्तव, पुणे

हार की अब बात मत कर

जीत की जलधार में बह, हार की अब बात मत कर ।
हम बड़ी मुश्किल से निकले हैं सभी कर्तव्य करके
दिक्कतों को तोड़, अपने हाथ में संकल्प धरके इस
समर्पण को न समझे व्यर्थ हमको बाँधते क्यों मंज़िलों
के रास्ते में पत्थरों को डालते क्यों
बात कर उम्मीद की, अब स्वप्न पर आघात मत कर ।

हम सही राहों पर चलकर रखते हैं सबको किनारे
सर झुकाकर चल रहे, पर हम नहीं बिल्कुल बिचारे
मत कहो, उस रस्ते पर अब हमें चलना मना है सुन
तुम्हारी बात से ये दिल बहुत ही अनमना है जो मिला
प्रभु से हमें वरदान, उस पर घात मत कर ।

यदि बुलंदी है कहीं तो खाइयाँ भी और गहरी हौसला
क्यों हारते हैं जब हमीं अपने हैं प्रहरी दिख रहा है
आसमां में हमको ऊँचा एक हिंडोला जैसे वो बचपन
का चंदा पहनकर निकला झिंगोला
आसमां की राह के सोपान पर संघात मत कर।

याद करो कुर्बानी

२३ मार्च १९३४ के दिन राजगुरू-सुखदेव-भगतसिंह शहीद हुए।

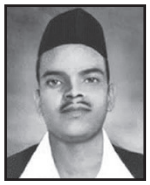
राजगुरू

सुखदेव

भगतसिंह

जिन्दगी को ठाँव दूँ

आओ बैठो ज़िन्दगी को ठाँव दूँ
सारे जीवन की तपिश को छाँव दूँ ।

लग रहा देखो थकन से तन भरा
कुछ व्यथा तो है कि जिससे मन भरा
नेह का शीतल महकता गाँव दूँ
सारे जीवन की तपिश को छाँव दूँ ।

है घरौंदा जैसे कोई लुट रहा
अरु हृदय में कुछ दबा-सा घुट रहा
फिर नए साहस के तुमको पाँव दूँ
सारे जीवन की तपिश को छाँव दूँ ।

ज़िन्दगी में ये निराशा किसलिए
इस कदर मन में हताशा किसलिए
मन को जो थिरका दे ऐसी नाव दूँ
सारे जीवन की तपिश को छाँव दूँ ।

वक़्त है, इसने सभी को है छला
कोई बच पाया कहाँ इससे भला
अपने आँचल की मैं तुझको छाँव दूँ
सारे जीवन की तपिश को छाँव दूँ ।

गज़ल

– साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी, झांसी

देख

अपने लोगों की कुछ भूलें, बिसराकर तो देख
और सुखों के बादल घर पर बरसाकर तो देख

माना जन की प्रकृति समूची नहीं बदलती है
किन्तु असम्भव पर प्रयत्न को फिसलाकर तो देख

छोटा, खोटा है यह संशय कभी न दिल में रख
बडे बडप्पन से छोटे को अपनाकर तो देख

एक–एक से मिलकर, दो का रूप संवरता है।
जीवन के इस महायोग को अजमाकर तो देख

दर्पण और लैन्स में अन्तर तुम न जान सके
श्रेष्ठ पारदर्शी नजरों को पनपाकर तो देख

कभी तेज गर्मी में देखो, जमती नहीं बरफ
मौसम में शीतलता पहले घुलवाकर तो देख

पानी की गति और दिशा निर्धारित करती जो
उस नदिया से बन्जर धरती सिंचवाकर तो देख

कलियाँ खुद आमंत्रण देगी तुम यदि योग्य 'सुमन'
भौरे जैसी प्रीत जगा दिल, मंडराकर तो देख

बात कर

न अधिक बस एक क्षण की बात कर।
मुझसे मेरे आज मन की बात कर।।

तू बहुत दिन से गगन में उड रहा
अब धरा के रोते–कण की बात कर

घोंसले तो सैकडों बन जायेंगे
हर्ष से बस आज, तृण की बात कर

अब प्रदूषण दे रहे उद्यान है...
त्याग इनको आज, वन की बात कर

दूध की नदियाँ बहाना बाद में
सूखते कमजोर थन की बात कर

उन बडों से अपनी, ना पहिचान है
मत बहक, बस आम जन की बात कर

लेखनी का युद्ध, तेरी हार है
मान भी जा, अब न मन की बात कर

व्यर्थ के आश्वासनों में क्या ''सुमन''
सत्य मन से आज, प्रण की बात कर

चिंतन

पहचानें कौन आपका मित्र

– डॉ. ऋषिमोहन श्रीवास्तव, ग्वालियर

आज वास्तविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति यांत्रिक जीवन जी रहा है। वह हर रोज तमाम प्रकार की उधेड़बुन में लगा रहता है, किस प्रकार ज्यादा से ज्यादा रूपया–पैसा अर्जित किया जाए– कैसे ढेर–सारी सुविधाएँ कार, बंगला, ए.सी. आदि सुख–सुविधाएँ हासिल की जाएं।

अधिकतर लोग ऐसे ही दिखलायी देंगे जो हमेशा व्यस्त नजर आयेंगे। उनके पास कुछ न कुछ समस्यायें रोजाना ही बनी रहती हैं। ऐसा भी नहीं है कि सारे लोग सुख–सुविधाओं को एकत्रित करने में ही सम्पूर्ण जीवन निकाल देते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने बड़ी ही साधारण जिंदगी जी है। वे अत्यन्त सादगीवाला जीवन जी रहे हैं।

आप ऐसा मान सकते हैं कि दुनिया का हर व्यक्ति वैभव सम्पन्न नहीं होना चाहता या हर व्यक्ति सिर्फ पैसा ही नहीं कमाना चाहता। कुछ व्यक्ति इस संसार में ऐसे भी हैं जो यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करने में ही पूरी जिंदगी गुजार देते हैं। देखा जाए तो निष्कर्ष यही निकाल सकते हैं। कुछ लोग दिन रात लगे रहते हैं कि कैसे लखपति करोड़पति बना जाए।

कुछ ऐसे व्यक्ति भी कम नहीं हैं, जो रोजाना जितनी कमाई करते हैं उतनी ही कमाई रोजाना खर्च कर देते हैं। उनके पास संचय करने के लिए कुछ नहीं होता। सामान्यत: किसान, मजदूर गरीबों की यही स्थिति है। कुछ बड़े किसान भले सम्पन्न हैं उनके पास करोडों की जमीन–जायदाद होती है। शेष ऐसे बहुत सारे मजदूर भाई हैं, जो अपने गाँवों से निकलकर दूसरे बड़े शहरों में जाकर मेहनत मजदूरी कर रहे हैं तब उनके परिवार का भरण–पोषण हो रहा है।

ऐसी यांत्रिक जिंदगी में गर हम आपसे एक प्रश्न करें कि आपका सच्चा मित्र कौन है? तो शायद ही आप किसी का नाम गिना सकें या गिनाने भी बैठें तो शायद दो–तीन नाम गिना भी दें। आप बताने लगें कि फलांने व्यक्ति ने कब कैसे आपकी मदद की थी या फलांने ने हमें इस तरह परेशानी में या मुसीबत में बचाया।

आज हमें बहुत बड़ी जरूरत है कि हम अपने आसपास के लोगों को पहचानें– वे लोग आपके बारे में क्या विचार रखते हैं? भले फिर वे आपके पड़ोसी या रिश्तेदार परिजन हों। हमें सामान्य रूप से इस बात पर गौर जरूर करना चाहिए। कई बार हमें बड़ा धोखा हो जाता है जिन्हें हम अपना परम मित्र–सगा सम्बन्धी समझते हैं, वे ही हमारे साथ परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से दगा कर जाते हैं।

हमारे एक मित्र थे– उन्होंने अपने एक मित्र को बडा ही विश्वासी और आत्मीय माना। उन्होंने उस साथी को अपने दवा के व्यापार में बराबर का सहयोगी (पार्टनर) बना लिया। मात्र १ वर्ष के बाद ही बिजनिस में बडा घाटा हुआ। जब परोक्ष रूप से देखा गया तो ज्ञात हुआ कि मेरे मित्र के साथी ने उनके एकाउंट से चाहे जब पैसे निकाले थे और अंत में व्यापार में घाटा उठाना पड़ा। आज स्थिति यह है कि मेरे और उनके साथी रहते भले एक कॉलोनी में हैं, पर आपस में जघन्य–दुश्मनी हो गई है। एक दूसरे का मुंह भी नहीं देखना चाहते जबकि पहले दोनों रोजाना घंटों साथ बैठे बातचीत करते थे।

हमें ईश्वर ने बुद्धि, विवेक, ज्ञान दिया है फिर भी ऐसी भूलें हो जाती हैं। हम सही रूप से अपने

मित्रों की परख नहीं कर पाते। जिन्हें दुश्मन समझते हैं वे दोस्त निकलते हैं, और जिन्हें अपना परम मित्र, वे विश्वासघात कर बैठते हैं। एक तथ्य हैं कि हम अपने व्यवहार को संतुलित रखें फालतू और निरर्थक सम्पर्कों को तिलांजलि दें। जो व्यक्ति अपने काम से काम रखता है संभवत: वह सर्वाधिक सुखी रहता है।

कुछ ऐसे सम्पन्न व्यक्ति हैं, उनको हरदम पांच-दस लोग घेरे रहते हैं। ऐसे लोग आपको इसलिए नहीं घेरे रहते कि आप बहुत व्यवहारिक या सामाजिक हैं। बल्कि वे तो आपसे इसलिए सम्पर्क रखते हैं कि उन्हें आपके पास रहने से मुफ्त का खाना-पीना मिल रहा है। वे आपकी तारीफ में दो-चार जुमले ठोक रहे हैं और आप बस प्रसन्न हो गए।

ऐसे फालतू और निरर्थक लोगों से अपने आपको मुक्त रखें- हो सकता है कि ऐसे लोग वक्त पड़ने पर आपके साथ धोखा और फरेब कर दें।

'होली' का त्योहार

युधिष्ठर के पूछनेपर श्रीकृष्ण ने इस होलीका उत्सव का प्रारंभ कैसे हुआ, यह बतलाया।

कहानी यह है कि रघु के राज्यमें ढोंढा नामक राक्षसी थी,उसने काफी उत्पात मचाया था; वह किसी चीज से डरती नहीं थी। शिव से उसे वरदान प्राप्त था।

केवल क्रीड़ा करनेवाले बच्चों से भय खाती थी, इसलिए गुरू वसिष्ठ ने उपाय बतलाया कि बच्चे लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़े लेकर बाहर निकलें और सूखी घास के ढेर में आग लगायें, तालियाँ बजायें, अग्नि की परिक्रमा करें, लोकभाषामें गालियाँ गाएँ, हँसे-उठायें-यह राक्षसी मर जायेगी। तब से होली शुरू हुई ।

इस कथा का अभिप्राय है कि जड़ता छोड़ो, उल्लास मनाओ। होली का पर्व प्राचीन काल के तीन दिनों मदनोत्सव का परिवर्धित रूप है।

यह रंग का त्योहार है, गीतोंका त्योहार है, ऋतुराज वसंत के अनुकूल स्वयं को ढालने का त्योहार है। होली का त्योहार सामाजिक समरसता का निर्देशन है। होली खेलते हुए छोटे-बडे का भेद मिट जाता है।

यह त्योहार रंगों का त्योहार है। यह उत्सव संकीर्णता और असुरक्षा के भाव से मुक्त होने का त्योहार है।

परन्तु आज होली उपचार होकर रह गयी है। बडे योजनाबद्ध रीतिसे होली-मिलन समारोह होता है। वह भी 'इव्हेंट' बन गया है। वहीं कोई ज्वार दिखता नहीं। उल्लास दुबका रहता है।

***

पुस्तक चर्चा

विविध रंगो में सजा काव्य संग्रह – मेरा सरमाया

कवयित्री – कविता राजपूत

– समीक्षक – रमेश यादव, मुम्बई

हिंदी के साथ मराठी में भी सृजन कर रही, चित्रकार, गायिका, कवयित्री अर्थात बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी, कविता राजपूत का नया काव्य संग्रह मेरा सरमाया हाल ही में प्राप्त हुआ। 'मेरा सरमाया' अर्थात मेरी सम्पत्ति। वाकई में हर सृजनकार के लिए उसका सृजन उसकी अनमोल सम्पत्ति होती है। प्रस्तुत कृति उनकी पांचवी काव्य कृति है। इसके पहले जज़्बात, रंग जीवनाचे (मराठी), प्रवाह (मराठी), काग़ज कलम स्याही और मैं', सय (सीडी), पंच मंत्रांजली (सीडी) जैसी काव्य–गीत कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सबसे पहले तो इस नए काव्य संग्रह के लिए तहे दिल से बधाई देता हूँ, अभिनंदन करता हूँ, इस उम्मीद और शुभकामनाओं के साथ कि उनकी लेखनी का यह कारवां इसी तरह अविरत चलता रहे और नई–नई कृतियों का सृजन होता रहे। प्रस्तुत काव्य संग्रह बेहद आकर्षक, संवेदनशील, पठनीय एवं आंतरिक ज़ज्बातों से ओत–प्रोत ८३ कविताओं का वह गुलदस्ता है जिसमें विविध रंगों एवं शैलियों के काव्य पुष्पों को निखरित किया गया है। इसके सृजन को लेकर कवयित्री अपनी प्रस्तावना में लिखती है ह्न इस कृति के बहाने मेरी ख्वाहिश और फरमाइश पूरी होने जा रही है। मेरी कविताएं अपना नया घर पाकर बेहद खुश हैं और यकीनन मैं भी ....।

कवयित्री ने इस अनमोल एवं संवेदनशील कृति को अपने नन्हें से प्यारे राजकुमार किआन (पोता) को समर्पित किया है, इस आशीर्वाद के साथ कि भविष्य में जीवन की हर सफ़लता के साथ – साथ कला, साहित्य, संगीत, संस्कृति उसके विचारों और व्यक्तित्व में रच बस जाएँ। विविध भाव–भावनाओं और रंगों में पगी इन कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने अपने ज़ज्बातों को पाठकों तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। मसलन गिरते गिरते संभलना आ ही गया/ रफ़्ता रफ़्ता अब जीना आ ही गया। अश्कों की ये जिद है बहेंगे मगर / रोते रोते भी हंसना आ ही गया। मोहताज नहीं झूठे रिश्तों के हम / आदमी को परखना आ ही गया। कवयित्री एक ओर कांटों भरे रास्ते से गुजरते हुए जीवन में फिर से खड़े होने का संदेश देती है, वहीं दूसरी ओर शृंगार रस में डूबी नायिका के रूप में लिखती है– मैं अब जाने कहाँ गुम हूँ / अब तो बस तुम ही तुम हो / मन की सारी गिरहें खुल गई हैं / जैसे बारिश के आने से धूल की परतें मिट जाती हैं। बारिश में सराबोर नायिका उत्सव मनाती है तथा प्रियतम से मिलन के बाद गाती है ह्न तुझको पाया तो मुझको ऐसा लगा / जी ना पाऊँगी तुझसे होके जुदा / तेरे एहसास मुझे छू के चले जाते हैं / तू ही सरमाया मेरा, तू है मेरा खुदा। 'मौन ने मृत्यु दी...' कविता में वह व्यक्त है– पता है, तुम मेरे लिए हमेशा / शब्दों के जादूगर रहे हो / तुम्हारे शब्दों के इर्द–गिर्द घूमती रही / मेरी जिंदगी। 'बरसात' नामक कविता में नायिका कहती है– दे दो न मुझको तुम वह / पहली सी बरसात / कुछ भीगे भीगे लम्हों की एक छोटी सी मुलाकात। 'दस्तक' कविता में प्रतीक के रूप में बारिश को किया गया है– तेज धूप में भी / दिल में एक ठंडक है / महसूस करो जरा / उसके आने की आहट है।

प्रस्तुत संग्रह में शृंगार रस की कविताएँ प्रमुखता से अपने राग–विराग का आलाप करती नजर आती

हैं, जो कि कवयित्री का मजबूत पक्ष है। सृजन जगत में शृंगार रस को 'रसराज' कहा जाता है। इसके दो प्रमुख पक्ष हैं – एक तो संयोग पक्ष, जहां नायक और नायिका के मिलन का भाव उभरकर सामने आता है और दूसरा वियोग पक्ष है, जिसमें बिछोह का स्वर गुंजित होता है। सृजन में प्रेम भावनाओं की अभिव्यक्ति हमेशा से अद्वितीय रही है। संयोग में प्रेम की कोमलता, आकर्षण और मिलन का आनंद व्यक्त हुआ है तो वियोग में बिछोह, पीड़ा और तनहाई का राग उजागर हुआ है। संयोग एवं वियोग की इन कविताओं में भावनाओं की सूक्ष्मता और उनके विविध रूपों को प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। विरह के बाद निराश नायिका टूटकर बिखरने की बजाय नए सपनों के साथ जीना सीख लेती है और लिखती है – बस इतना सा बदला है मौसम / दिल के घर में अब दर्द रहता है / इस दर्द ने ही सिखाया हमें / जिंदगी को कैसे जिया जाता है...।

लौकिक दृष्टि से प्रेम केवल दो प्रेमियों के मिलन तथा नायिका के नखशिखांत सौंदर्य का वर्णन ही नहीं, बल्कि प्रकृति, पशु-पक्षी, माता-पिता, जीवन साथी, श्रद्धेय ईश्वर के प्रति भक्ति प्रेम आदि का इजहार भी होता है। जो इस संग्रह में 'लव यू जिंदगी, नदी के दो किनारे, चल पड़ी हूँ, हरसिंगार, एक चिट्ठी मां के नाम, मोगरे के फूल, क्या तुम ही थे मेरे कृष्ण?, मेरे सांई, मेरे गिरिधर जैसी कविताओं में व्यक्त हुआ है। मीरा और बिहारी ने श्रीकृष्ण को प्रेम का प्रतीक मानकर भक्ति रस में पगी शृंगारिक रचनाओं का सृजन किया है। इस संग्रह की नायिका भी वियोग में लिखती है- तुमसे मिले दर्द का एक एक / कतरा सहेज कर रखा है मैंने / क्योंकि यह दर्द मेरे लिए बेशकीमती है.../ इसी ने सिखाया मुझको / गमों की तपिश को सहकर / गुलमोहर सा बनना / कांटों भरी राह पर / मुस्कुराते हुए चलना। वियोग के क्षणों मे भी नायिका उम्मीद की आस जगाए रखती है और तब कवयित्री लिखती है- जानती हूँ / वो कभी लौटकर नहीं आएगा / फिर भी हर शाम द्वार की देहरी पर / मैं एक दीप जला देती हूँ। एक और कविता में नायिका के माध्यम से कवयित्री लिखती है ह्न 'जो बीत गया, वो अनुभव बन गया / जो बिछुड़ गया, वो एक अध्याय बन गया / जितने आंसू बहे इन आँखों से / वो सितारों भरा आसमान बन गया। / जो कुछ टूटकर बिखर गया था / उसे समेटकर मैंने / जीवन का एक नया चित्र बनाया / उसे अनेक रंगों से सजाते हुए महसूस हुआ कि प्रेम बाहर नहीं / भीतर है...। संग्रह की कुछ सामाजिक कविताएं मसलन ह्न किराएदार, स्त्री, पापा, विसर्जन, जिंदगी एक तोहफा, ठोकर एक सबक है आदि बेजोड़ रचनाएं हैं जो विपरीत परिस्थतियों में सकारात्मकता के गीत गाती हैं।

कुछ वर्ष पहले कविता जी काव्य संग्रह 'काग़ज कलम स्याही और मैं' के लोकार्पण समारोह में शिरकत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। इस बार लोकार्पण समारोह का आयोजन नहीं कर पा रही हूँ। कहते हुए वे कुछ भावुक हो रही थीं। वैसे कोरोना महामारी के बाद इस तरह की स्थिति से कई लेखकों को गुजरना पड़ रहा है, यह वास्तविकता है। इस संग्रहणीय काव्य संग्रह का साहित्य जगत में गर्मजोशी के साथ स्वागत किया जाएगा, इसमें कोई दो राय नहीं है। शुभकमनाओं सहित।

मन सृष्टि के विधाता द्वारा मानव-जाति को प्रदान किया गया एक ऐसा उपहार है, जो मनुष्य के परिवर्तनशील जीवन की स्थितियों के अनुसार स्वयं अपना रूप और आकार भी बदल लेता है।

-वीर सावरकर

व्यंग्य

आप बड़े अजीब हैं

– प्रेम जन्मेजय, मुम्बई

कभी आप, बड़े वो हुआ करते थे, बड़ा अजीब हो गए हैं।

वह मुझसे आयु में छोटा है पर कद में बड़ा है। वह मेरा अजीज है। कल मार्ग में अपने मित्र के साथ टकरा गया। मुझे देखते ही अमेरिकी लहजे में बोला– अंकल जी, आपने ठीक नहीं किया, आप बडे अजीब आदमी हैं। शुक्र है उसने बेइज्जती से इज्जत की। उसने मुझे अजीब ही सही, पर आदमी तो कहा और जो भी लगाया। अजीज व्यक्ति अजीज हो सकता है, अजीब व्यक्ति अजीज नहीं होता। अजीब व्यक्ति अजीब प्रश्न करता है। जो आपका स्वार्थ नहीं साधता, बडा अजीब होता है। अजीब लोग समय के साथ नहीं चलते हैं, वे अजायबघर की वस्तु मात्र होते हैं।

कहते हैं क्षमा बडन को सोहत है छोटन को उत्पात। अजीब बात यह है कि कुछ छोटे, छोटे होकर भी उत्पात करते हैं और बड़े होकर भी करते हैं। उत्पात किया और चरण छू लिया। प्रजातंत्र की तो परिभाषा यही है कि पांच वर्ष तक उत्पात करो और फिर चरण धूल लो उसे फांक लो। ऐसे लोग धूल में शतरंज खेल–खेल कर में बड़े होते हैं तथा बड़े होते ही धूल झाड़ लेते हैं। इनके हाथ पहले चरण छुवाई करते हैं, घुटना छूते हैं, दूर से पाय लागन करते हैं और फिर 'पूजनीय' चरणों को उत्पाती अडंगी मारते हैं और स्वय बड़े हो जाते हैं।

मुझ जैसे बड़े अजीब वस्तु होते हैं तो उन जैसे छोटे, अजीब हरकती होते हैं।

मैंने कहा– हे मेरे अजीज, मैंने ऐसा क्या कर दिया जो ठीक नहीं था और मैं बड़ा अजीब हो गया?

आपको मैंने अपने बेटे की बर्थडे पार्टी पर इनवाईट किया था और आप आए नहीं। आपने तो मेरे इनवाईट को लाईक तक नहीं किया। मुझे तो नहीं मिला, कब भेजा था?

व्हाट्स एप्प किया था।

तुम तो जानते ही हो कि मुझे व्हाटस एप्प ठीक से कहाँ आता है।

आप भी पिछड़े ही रहेंगे अंकल। पिछली बार तो सिखाया था, फेसबुक पर आपका एकाउंट भी बनाया था। मैंने फेसबुक पर भी इनवीटेशन डाला था। अंकल फेसबुक पर मेरे पाँच हजार फ्रेंड और ढेर फालोअर हैं, खूब सारे लाईक और कमेंट आए।

फेसबुक के सारे दोस्त आए थे?

नहीं अंकल वो तो केवल इन्फर्मेशन और पब्लिसिटी के लिए होता है। मैंने फोटोज के साथ अगले दिन पोस्ट किया था। और मिठाई के डिब्बे की फोटो भी। सब वर्चुअल फ्रेंड हैं, जिन्हें बुलाना था उन्हें कार्ड व्हाटस एप्प कर दिया था।

मेरे अजीज, एक फोन ही कर देता, मैं बडा अजीब होने से बच जाता।

इतने में, मेरे अजीज के साथ खडे उनके 'शुभचिंतक बोले' ये प्रतिभाशाली युवक उचित कह रहा है, त्रुटि आपकी ही है। यह लालटेन युग नहीं है। ओर कैसी शिक्षा दे रहे हैं आप इसे? आप जैसे ही युवा पीढी को दिग्भ्रमित करते हैं, उसे भ्रष्टाचार सिखाते हैं।

भ्रष्टाचार। बडी अजीब बात कर रहे हैं... मैं अपने अजीज को बेईमानी सिखा रहा हूँ, उसे जालसाज बना रहा हूँ...?

आप इसे भ्रष्ट हिंदी सिखा रहे हैं, आपका आचरण

भ्रष्ट है। हिंदी भाषा को आप जैसे लोगों ने ही भ्रष्ट किया है। आप हिंदी के भ्रष्टाचारी हैं... हिंदी को उर्दू की बैसाखी नहीं चाहिए, हमारी हिंदी इतनी गरीब नहीं है।

पर हिंदी का प्रयोग तो गरीब लोग ही करते हैं।

क्या बात करते हैं श्रीमान। करोडों कमानेवाले फिल्मस्टार, चुनावकाल में अहिंदी भाषी करोड़पति वोटार्थी और करोड़ोवाली कंपनी के बडे-बडे उत्पादों के विज्ञापन हिंदी का प्रयोग करते हैं... वो गरीब हैं?

प्रयोग नहीं दुरूपयोग करते हैं। वो भाषा को अधिक भ्रष्ट करते हैं।

चलिए जो भी हो, हिंदी तो फल फूल रही है न...

मैंने कहा-फूल ही रही है, फल तो... और ये बताएँ जब मेरा अजीज हिंदी में अंग्रेजी की मिलावटी भाषा बोल रहा था तब आपने कुछ नहीं टोका?

ये तो अभी युवा है...

ये युवा है तो मैं लेखक हूँ। मेरे पात्र अपनी जुबान बोलते हैं, शोधग्रंथ की जुबान नहीं।

लेखक होने का अर्थ ये नहीं है कि...

हिंदी को गुत्मगुथा होते देख युवा शक्ति समझौतार्थ कूदी-अरे छोडिए न कमल जी, मेरे अंकल बहुत बडे लेखक हैं। बहुत बुक्स लिखी हैं इन्होंने... आप तो हिंदी वाले हैं, आपने इनका नाम श्री .... सुना ही होगा।

अचानक कमल जी दंडवत की मुद्रा में आ गए और बोले- आप.. जी हैं। आप तो अति उत्तम लिखते हैं। आपकी क्या भाषा है, शैली है। आप तो हास्य व्यंग्य के शीर्ष हैं... क्षमा करें... आपको दंडवत प्रणाम है।

कोई बात नहीं।

मैं हूँ रमेश 'कमल'। पहले मैं रमेश 'हाथी' के नाम से, आपकी तरह हास्य-व्यंग्य लिखता था पर मंच की पॉलिटिक्स के कारण जम नहीं पाया। घटिया लोग मेरे नाम का उपहास करते थे। फिर मैं रमेश 'हाथ' के नाम से लिखने लगा। पर कोई उपलब्धि नहीं हुई। आजकल मैं रमेश 'कमल' के नाम से लिख रहा हूँ। श्री... तो आपके अभिन्न मित्र हैं। वो तो मॉरिशस में होनेवाले विश्व हिंदी सम्मेलन समिति के सदस्य हैं। हम भी हिंदी की सेवा कर लें... मेरा भी कुछ जुगाड जमाईए न... '' कमल जी के लिए मैं अजीब से अजीज हो गया था।

मैंने कहा-इसी जुगाड़ के कारण ही तो हिंदी कदमताल कर रही है। राजनीति, फिल्म, बाजार आदि सभी तो हिंदी का जुगाड़ बिठाते हैं। इसी जुगाड़ के कारण ही तो हिंदी यूज एंड थ्रो बन गई है।''

वे दंडवत लेट गए - आप सब सही फरमा रहे हैं। देखिए मेरे नाम में कमल है...आप बस मेरी सिफारिश कर दें... हिंदी सेवा नहीं की तो जीवन बेकार हो जाएगा...'' उनकी आँखो से हिंदी आँसू बन टपकने लगी। उनके आचरण का तो पता नहीं भाषा भ्रष्ट हो गयी थी। मेरे अजीज ने उन्हें उठाया और बोला, 'बडे अजीब हैं कमल जी... मिला तो रहे हैं एम पी से... इत्ते बडे होकर काहे टेसू बहा रहे हैं...हो जाएगा आपका काम।''

जलान्तश्चन्द्रचपलं जीवनं खलु देहिनाम् ।
तथाविधिमिति त्वाशाश्वत्कल्याणमाचरेत् ।।

भावार्थ :

जिस प्रकार चन्द्रका प्रतिबिम्ब अस्थिर होता है उसी प्रकार मनुष्यका जीवन भी अनिश्चित और अस्थिर होता है। विधिके इस विधानको जानते हुए मनुष्यको ऐसे कार्य करते रहना चाहिए जिससे स्वयंका एवं समाजका शाश्वत कल्याण हो।